RNI No.: MPHIN/2018/77137

ISSN 2582-483X

भीतर और बाहर

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय का प्रकाशन

वर्ष-5 अंक-14 दिसम्बर 2022
तिमाही, भोपाल

दिसम्बर, 2022 (वर्ष 5, अंक 14)

प्रकाशक

- **अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय**
सर्वे नम्बर 66, बुरुगुंटे विलेज, बिक्कनाहल्ली मेन रोड,
सरजापुरा, बेंगलूरु 562125 कर्नाटक
Web: www.azimpremjiuniversity.edu.in

सम्पादकीय कार्यालय

- **सम्पादक**
पाठशाला भीतर और बाहर
अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन
प्लाट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव
सोसायटी, ई-8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा,
भोपाल, म.प्र. 462039 फोन-0755-4074060
pathshala@apu.edu.in
gurbachan.singh@azimpremjifoundation.org
मो. 8226005057

डिज़ाइन एवं प्रिंट

- **गणेश ग्राफिक्स,**
26-बी, देशबंधु परिसर,
प्रेस काम्प्लेक्स,
एम.पी.नगर, जोन-1
भोपाल, म.प्र. 462011
ganeshgroupbpl@gmail.com
मो. 9981984888

पाठशाला भीतर और बाहर पत्रिका, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन का हिन्दी प्रकाशन है। यह शिक्षकों, शिक्षक प्रशिक्षकों, अन्य ज़मीनी कार्यकर्ताओं व शिक्षा से सरोकार रखने वाले सभी व्यक्तियों और संस्थाओं के लिए विचार-विमर्श का एक मंच है। पत्रिका का उद्देश्य शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत व्यक्तियों के अनुभवों व आवाज़ को जगह देकर शिक्षा के विमर्श को गहन व यथार्थपरक बनाना है।

अनुक्रम

सम्पादकीय

हम जानते हैं कि मानवीय-सामाजिक मूल्यों व संवैधानिक रूपरेखा के अनुरूप शिक्षा के वृहद लक्ष्यों को हासिल करने के लिए हमें अनवरत काम करना होगा। सीखना-सिखाना और शिक्षा में बदलाव एक सतत चलने वाली प्रक्रिया है। शिक्षा में बदलाव की यह प्रक्रिया समाज के साथ अभिन्न और स्थाई रूप से जुड़ी है। हम जैसा समाज चाहते हैं, वैसी शिक्षा भी होनी चाहिए। इसलिए एक लोकतांत्रिक, भेदभाव रहित, समानता-आधारित समाज बनाने के लिए बच्चों से इन सन्दर्भों में बात करनी ही होगी। इस मायने में स्कूल, कक्षा और शिक्षा की भूमिका काफ़ी महत्त्वपूर्ण है क्योंकि ऐसे समाज के निर्माण का रास्ता कक्षाओं के भीतर काम करने से ही निकलने वाला है। *पाठशाला* के इस अंक के विभिन्न स्तम्भों के अन्तर्गत हम स्कूल के भीतर और बाहर से जुड़े विविध पहलुओं पर आलेख पढ़ेंगे जो शिक्षा और समाज के इन अन्तर्सम्बन्धों को न सिर्फ़ दिखाते हैं बल्कि उन्हें समझने में भी मदद करते हैं। इस समझ का इस्तेमाल स्कूलों के भीतर और बाहर, दोनों लिहाज़ से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

विमर्श स्तम्भ में अमित कोहली का आलेख 'दो दुनियाओं का अबूझ संवाद' एक राज्य की पाठ्यपुस्तकों की विषय-वस्तु का विश्लेषण करता है। सीखने-सिखाने के दौरान इस विषय-वस्तु पर हो रहे काम के अवलोकन को रखते हुए अमित बताते हैं कि आदिवासी एवं ग्रामीण समुदाय के बच्चों के लिए आधुनिक व शहरी उदाहरणों वाले पाठ्यपुस्तकों के अध्याय सीखने में मददगार नहीं होते। वे सवाल उठाते हैं कि तथाकथित आधुनिक और शहरी सन्दर्भ ही बच्चे क्यों पढ़ते हैं, और बच्चों की अपनी संस्कृति को पाठ्यपुस्तक में जगह क्यों नहीं मिल पाती।

माया मौर्य ने 'पोंगल' कहानी के माध्यम से 'असमानता और भेदभाव' के मुद्दे पर बच्चों के साथ हुई चर्चा का ब्योरा रखा है। कहानियाँ अकसर ही अपने पात्रों के चरित्र, उनके काम और उनकी ज़िन्दगी के बहाने से सुनने और पढ़ने वालों के मन की इच्छाएँ, प्रतिक्रियाएँ, शंकाएँ व मत रखने का रास्ता बन जाती हैं। 'पोंगल' कहानी सुनने के बाद लेखिका की कक्षा के बच्चों ने भी समाज में मौजूद असमानता और भेदभाव पर अपने अनुभव साझा किए। कक्षा में हुई बातचीत दर्शाती है कि अभी भी समाज में काफ़ी असमानता है, और साथ ही यह बच्चों की इन मुद्दों की समझ, और उनकी पीड़ाओं को भी दर्शाती है।

परिप्रेक्ष्य स्तम्भ के तहत पहला आलेख हृदय कान्त दीवान का है। अपने इस लेख में वे विज्ञान के शिक्षण और वैज्ञानिक मिज़ाज को विकसित करने के बारे में बात करते हैं। वे बताते हैं कि वैज्ञानिक मिज़ाज सिर्फ़ विज्ञान विषय से नहीं जुड़ा है, बल्कि यह तार्किक और विवेकशील होकर सोचने का तरीक़ा है। केवल वैज्ञानिक अवधारणाओं के सन्दर्भ में ही नहीं, बल्कि समाज में चली आ रही परम्पराओं, मान्यताओं, सूचनाओं, सभी के सन्दर्भ में यह ज़रूरी है कि इंसान उन्हें बिना सोचे-समझे न अपनाए।

पारुल बत्रा अपने आलेख 'पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में थीम-आधारित शिक्षण' में बाल विकास के शारीरिक एवं मनोवैज्ञानिक आयाम का आधार लेकर शुरुआती औपचारिक शिक्षण की कुछ बारीक़ियों और सावधानियों को रेखांकित करती हैं। स्कूल के लिए तैयारी, माने औपचारिक स्कूल के शिक्षण से पहले की तैयारी, के लिए भी काफ़ी योजनाबद्ध प्रयास की ज़रूरत होती है। इस आलेख में उन्होंने पहली और दूसरी कक्षा के लिए थीम को आधार बनाकर एक विस्तृत और अनुभवपरक योजना भी साझा की है।

इसी स्तम्भ में मीनू पालीवाल का लेख है, 'कक्षा संचालन'। कक्षा में बच्चों के साथ काम करते हुए कक्षा को व्यवस्थित करने और सीखने-सिखाने का काम करने में आई परेशानियों को वे सामने रखती हैं। वे बताती हैं कि कक्षा संचालन करते हुए कई बार ऐसा लगता है कि बच्चों को पीटकर, डाँटकर चुप करा दिया जाए। यह आसान भी लगता है, लेकिन तब भी बच्चों को डाँटना, पीटना सही नहीं है। वे ख़ुद कैसे बिना मारपीट और डाँट-डपट के कक्षा को संचालित कर पाईं, इस बारे में भी लेख में बताती हैं।

शिक्षणशास्त्र स्तम्भ के तहत ऋषभ कुमार मिश्रा का लेख 'आनुभविक अधिगम के लिए शिक्षकों के प्रयास', गाँधीजी की बुनियादी तालीम पद्धति पर विकसित हो रहे एक स्कूल के बारे में है। वे इस स्कूल के कक्षा 6, 7 और 8 के अवलोकन सामने रखते हैं। अपने इन अवलोकनों के आधार पर वे कहते हैं कि स्थानीय परिवेश और दैनिक जीवन के वास्तविक उदाहरण, जिनमें बच्चे ख़ुद भाग लेते हुए सीखते हैं, ऐसा सीखना काफ़ी हद तक रुचिकर, सहज व सटीक हो पाता है।

इसी स्तम्भ में 'भाग से क्यों भागना' लेख का फ़ोकस भाग की अवधारणा है और इसके लेखक हैं अंकित शुक्ला। अंकित भाग संक्रिया करने में आने वाली मुश्किलों और इसके शिक्षण की चुनौतियों के बारे में बात करते हैं। वे मुद्रा और ठोस वस्तुओं के उदाहरण लेकर रोज़मर्रा के सन्दर्भों में परिस्थितियाँ गढ़कर बच्चों में भाग की अवधारणात्मक समझ बनाने की कोशिश के अपने अनुभव प्रस्तुत करते हैं।

पूजा का आलेख 'भाग सीखने के तरीक़े' भी भाग की अवधारणा पर ही है। जैसा कि लेख के शीर्षक से ही स्पष्ट है, लेखिका ने बच्चों के साथ भाग की अवधारणा पर काम के अपने अनुभव लिखे हैं। अपने इस अनुभव में वे यह रेखांकित करती हैं कि अकसर कक्षाओं में भाग सीखने के चरणों पर इतना ज़ोर दिया जाता है कि बच्चे इन चरणों में ही बँधकर रह जाते हैं। इस बँधने से वे आम जीवन में बाँटने के लिए इस्तेमाल होने वाले व्यवहारिक तरीक़े से जुड़ नहीं पाते व भाग की अवधारणा भी ठीक से नहीं समझ पाते।

अगले तीन लेख **कक्षा अनुभव** के हैं। अलका तिवारी का आलेख 'खुले प्रश्नों के खुले जवाब' एक ऐसी शिक्षण पद्धति की बात कहता है जिसमें बच्चों से सक्रिय और सहभागी बातचीत प्रमुख आधार है। कहानियों का या कोई अन्य सन्दर्भ लेते हुए बच्चों को ऐसे सवालों के ज़रिए अर्थपूर्ण बातचीत में शामिल करना चाहिए जिसमें उन्हें अपने विचार रखने, कल्पना करने, अनुमान लगाने, अपने अनुभवों से जोड़कर देखने और तर्क व विश्लेषण के मौक़े मिलें। इससे बच्चों को इन कौशलों का इस्तेमाल करने व इन्हें विकसित करने का मौक़ा मिलता है और वे इस तरह के अभ्यास में पारंगत होते जाते हैं।

'इबारती सवालों पर काम के कुछ अनुभव' की लेखिका मारिया हैं। मारिया अपने स्कूल का अनुभव रखते हुए बताती हैं कि कक्षा 6 के बच्चे भी गणित में इबारती सवालों को नहीं कर पा रहे थे। वे कहती हैं कि बच्चों के साथ गणित में केवल संख्याओं और संक्रियाओं पर ही काम होता है। यह गणित के स्कोप को बहुत ही सीमित करना है। अपने गणितीय अनुभवों पर बातचीत कर पाना, दूसरों के गणितीय अनुभवों को सुनकर समझ पाना, इसी तरह सवालों को पढ़कर समझ पाना और मौखिक सवाल पूछ पाना भी महत्त्वपूर्ण गणितीय कौशल हैं। वे यह भी दिखा पाती हैं कि गणित अगर बच्चों को सहज और अपने सन्दर्भों से जुड़ा लगने लगेगा, तो वे न सिर्फ़ इबारती सवाल हल कर सकेंगे बल्कि उन्हें बना भी सकेंगे। यह लेख भाषा और गणित के सम्बन्ध को भी रेखांकित करता है।

इस स्तम्भ का तीसरा आलेख 'शिक्षा की निरन्तरता बनाए रखने की एक कोशिश' कविता कपिल का लिखा हुआ है। वे बताती हैं कि लॉकडाउन के दौरान शिक्षण की कोशिशों को लगातार बनाए रखने के लिए उन्होंने वर्कशीट निर्माण के बारे में सोचा। बच्चों और अभिभावकों से बातचीत करते हुए उनका समूह वर्कशीट को बेहतर करने की दिशा में कैसे बढ़ा, इसका वे सिलसिलेवार ब्योरा देती हैं। वे यह भी बताती हैं कि वर्कशीट सीखने का सिर्फ़ एक ज़रिया है। वे आगाह करती हैं कि सीखने की हर स्थिति में वर्कशीट काम में आए, ऐसा हरगिज़ ज़रूरी नहीं है। कब, किस सन्दर्भ में, किस उद्देश्य के लिए वर्कशीट मददगार हो सकती है, यह सोच-विचार कर ही तय करना पड़ता है।

इस बार **फ़िल्म चर्चा** स्तम्भ के तहत *डेड पोएट्स सोसाइटी* फ़िल्म पर चर्चा प्रस्तुत है। तारेंद्र किशोर इस फ़िल्म की इस चर्चा में स्कूली शिक्षा के कुछ बुनियादी मसलों की तरफ़ ध्यान दिलाते हैं। सख़्त अनुशासन, रूढ़ मूल्यों की सीख, किताब को आँख मूँदकर स्वीकारना और सवालों व अभिव्यक्ति की जगह नहीं होना, इस शिक्षा प्रणाली की ऐसी मुश्किलें हैं जो शिक्षा के मूलभूत उद्देश्यों के विरोधाभास में दिखाई देती हैं। एक नवाचारी शिक्षक के माध्यम से इस स्कूल प्रणाली की जड़ता को तोड़ने के कुछ अच्छे दृश्यों की बढ़िया व्याख्या की गई है इस आलेख में।

साक्षात्कार स्तम्भ में आप इस बार पढ़ेंगे शिक्षिका रश्मि गौड़ से नरेश पंवार की बातचीत। रश्मि गौड़ प्रधान शिक्षिका के नाते न सिर्फ़ सभी विषयों का कक्षा शिक्षण करती हैं, बल्कि इसके लिए वे निरन्तर नया सीखते रहने का सजीव प्रयास भी करती हैं। हरदम सीखते रहना और नया सीखना उनके मूल मंत्र हैं। वे शिक्षकों के सामने एक मिसाल रखती हैं कि ख़ुद को अपडेट रखकर वे अपने पेशेवर विकास के साथ ही समय और बच्चों की उभरती ज़रूरतों को पूरा कर सकते हैं।

इस अंक के लिए 'क्या सामाजिक अध्ययन सिर्फ़ रटने का विषय है?' मुद्दे पर **संवाद** आयोजित किया गया था। वक्ताओं ने कहा कि यह रटने का विषय बिलकुल ही नहीं है, लेकिन कुछ कारणों के चलते यह ऐसा बन गया है, और इनमें तात्कालिक और ऐतिहासिक दोनों ही कारण सम्मिलित हैं।

पाठक चश्मा में, हमेशा की तरह, पिछले अंकों के कुछ लेखों पर पाठकों की प्रतिक्रियाएँ हैं।

आपको पता ही है कि *पाठशाला भीतर और बाहर* का अगला अंक सामाजिक अध्ययन विषय पर केन्द्रित है। आप सभी से इस विषय पर लिखने का आग्रह है। लेख इतिहास, भूगोल, राजनीतिशास्त्र आदि से जुड़े विभिन्न पहलुओं पर हो सकते हैं। आप इन विषयों को पढ़ाने के ठोस अनुभव, इन विषयों की अवधारणा को सीखने-सिखाने के तरीक़े, उनमें आने वाली चुनौतियाँ, विषय से सम्बन्धित किसी फ़िल्म या पुस्तक पर चर्चा, आदि लिख सकते हैं।

आपके लेखों का इन्तज़ार रहेगा।

सम्पादक मण्डल

दो दुनियाओं का अबूझ संवाद

अमित कोहली

जन्मदिन मनाना शहरी सामाजिक जीवन की एक सामान्य परिघटना है। आस-पड़ोस, गली-मुहल्ले, स्कूल-कॉलेज में हर एक-दो महीने में हमारे किसी क़रीबी का जन्मदिन होता है। उसे हम अपने-अपने तरीक़े से ख़ास बनाने की कोशिश करते हुए कोई आयोजन करते हैं। कुछ लोग घर पर अपने परिवार और नज़दीकी दोस्तों के साथ, तो कुछ किसी रेस्तराँ-होटल में जाकर ख़ुशी का यह दिन मनाते हैं। कोई घर के बने पकवान और मिठाइयाँ पसन्द करता है, तो कोई बाहर से खाना मँगवाकर दावत देता है।

समाज के प्रति सरोकार रखने वाले कुछ व्यक्ति इस दिन अनाथालय, वृद्धाश्रम या किसी ग़रीब बस्ती में जाकर फल, मिठाई, खाना, आदि बाँटकर ख़ुश होते हैं। कुछ लोग धर्मस्थलों या अस्पतालों को दान देने के लिए जन्मदिन का मौक़ा चुनते हैं। पर्यावरण संरक्षण की मुहिम का नतीजा है कि जन्मदिन पर पौधारोपण करने का चलन बढ़ रहा है। इसका प्रचार सरकार और ग़ैर-सरकारी संगठन कर रहे हैं, साथ ही कुछ स्कूलों में भी विद्यार्थियों के जन्मदिन पर पौधा लगाने का काम किया जाने लगा है।

महाराष्ट्र राज्य पाठ्यपुस्तक निर्मिती व अभ्यासक्रम संशोधक मण्डल द्वारा विकसित और प्रकाशित भाषा की *पाठ्यपुस्तक बालभारती* (अँग्रेज़ी माध्यम), कक्षा 2 में एक गतिविधि (1.5 लैंग्वेज स्टडी; पृष्ठ 11) है। संज्ञा पहचानने की इस गतिविधि में कुछ इस तरह का पैराग्राफ़ दिया गया है– “राजू नाम के विद्यार्थी का जन्मदिन है। स्कूल ले जाने के लिए उसकी माँ उसे आम का एक पौधा देती है। ‘हैप्पी बर्थडे’ कहकर सारे दोस्त उसे बधाई देते हैं। शिक्षिका के साथ जाकर वह स्कूल के पीछे पौधारोपण करता है। सारे बच्चे तालियाँ बजाते हैं।”

गतिविधि संज्ञा पहचानने की है। साथ में पौधा लगाने का प्रचार है और पर्यावरण संरक्षण भी सिखाया जा रहा है, जो अच्छी बात है। लेकिन इस गतिविधि में एक चीज़ और सिखाई जा रही है, वह है जन्मदिन की अवधारणा! इसपर पुनर्विचार की ज़रूरत है।

लोक बिरादरी प्रकल्प, हेमलकसा द्वारा संचालित साधना विद्यालय में जब पाठ्यपुस्तक

चित्र 1

बच्चों को ही जन्मदिन मनाने के बारे में पता था। टेलीविज़न के ज़रिए यह जानकारी उन तक पहुँची थी। शेष बच्चों से जब वर्ग शिक्षक ने बात की तो विद्यार्थी उनसे सहमत नहीं हो पा रहे थे। विद्यार्थियों का तर्क था कि 'जन्मदिन' तो वही होगा जिस दिन हम पैदा हुए थे। उसके बाद सारे दिन एक जैसे हैं। हम तो एक ही बार पैदा हुए हैं, फिर हर साल जन्मदिन कैसे?

का यह हिस्सा पढ़ाया जा रहा था तो कक्षा में रोचक बातचीत हुई और कुछ अनुत्तरित सवाल भी उठे। शिक्षक ने अपने तरीक़े से नवाचार करते हुए गतिविधि के मक़सद को विस्तार दिया।

विद्यालय की इस कक्षा-2 में कुल 20 विद्यार्थी हैं। यह कक्षा महुए के एक विशाल पेड़ की ठण्डी छाँव में लगती है। गोण्डी, तेलुगु और महारी, विद्यार्थियों की मातृभाषाएँ हैं। शिक्षण की माध्यम भाषा अँग्रेज़ी है। इसलिए कक्षा में इन सभी भाषाओं की मिली-जुली ध्वनियाँ गूँजती रहती हैं।

चर्चा में पहला मसला जन्मदिन की अवधारणा था। यह स्कूल पूर्वी महाराष्ट्र के आदिवासी बहुल अंचल में स्थित है। यहाँ गाँवों के कुछ ही घरों में टेलीविज़न है। बिजली कभी-कभी आती है। कई गाँवों तक बिजली पहुँची ही नहीं है। तालुका मुख्यालय के आसपास ही मोबाइल नेटवर्क रहता है।

हर साल जन्मदिन मनाना एक आधुनिक पर्व है। इस क्षेत्र में बहुतायत से बसने वाली माडिया और गोण्ड जनजाति के रीति-रिवाज़ों में ऐसा कभी हुआ नहीं है। इसलिए जब शिक्षक ने दूसरी कक्षा के बच्चों को वह पैराग्राफ़ पढ़कर सुनाया तो चर्चा की शुरुआत में अधिकांश विद्यार्थियों को यह समझ नहीं आ रहा था कि 'जन्मदिन' क्या होता है। कक्षा में दो-तीन

लेकिन चूँकि पाठ में 'जन्मदिन मनाने' का स्पष्ट उल्लेख था, शिक्षक ने कई सारे उदाहरण देकर और चित्र जुटाकर बच्चों को दिखाए। इस तरह विद्यार्थियों को समझाने का प्रयास किया कि जन्मदिन क्या होता है। इस क्रम में जन्मदिन के तमाम प्रतीक बाज़ारवाद की ओर इशारा कर रहे थे, मसलन, केक, मोमबत्तियाँ, गुब्बारे, रंगीन टोपियाँ, टॉफ़ियाँ, चमचमाते रंगीन काग़ज़ों में लपेटकर उपहार देना और लेना वग़ैरह। शहरी मध्यम वर्ग की जीवनशैली में रचे-बसे लोगों के लिए यह इतनी सामान्य बात है कि वे इस बारे में ठहरकर सोचना भी ज़रूरी नहीं समझते। जिन बच्चों के पास चप्पल और कपड़े तक नहीं होते, जिनके लिए जलेबी एक महँगी और ख़ास मिठाई है, उनके सामने केक और रंगीन टोपियों जैसी दुर्लभ वस्तुओं की उपयोगिता पर कक्षा में बातचीत करना कठिन था।

ख़ैर, शिक्षक ने जन्मदिन की अवधारणा बच्चों को जैसे-तैसे समझा दी। लेकिन जब पौधारोपण का ज़िक्र आया तो फिर कई प्रश्न उठ खड़े हुए। अगर किसी बच्चे का जन्मदिन छुट्टी के दिन आए तो? अगर उस दिन बहुत तेज़ बारिश हो रही हो तो? गर्मियों के मौसम में किसी का जन्मदिन आए तो नए लगाए पौधे को ज़िन्दा रखने के लिए पानी कहाँ से लाएँगे? चलते-चलते बात यहाँ तक पहुँची कि अगर पौधारोपण ही करना है, तो हम जन्मदिन

का इन्तज़ार क्यों करें? दूसरी कक्षा के उन विद्यार्थियों ने मिलकर तय किया कि कल ही हम अपने घरों से पौधे लाकर स्कूल के आसपास लगाएँगे।

अगली सुबह कई नन्हे हाथों में पौधे थे। रोशन और वैशाली गुलाब का एक-एक पौधा लाए। मानव और आरुष अमरूद के पौधे लेकर आए। हंशिका सूरजमुखी का पौधा लाई थी। सबने मिलकर गड्ढे खोदे, पौधे लगाए और बाल्टियों से ढोकर पानी दिया। हालाँकि, पानी की कमी और देखभाल के अभाव में वे पौधे कुछ हफ़्तों में मर गए।

पाठ्यपुस्तकों के पाठ लिखने वाले विद्वान अकसर शहरी मध्यम वर्ग से आते हैं। अगर वे उस पृष्ठभूमि के न भी हों, तो स्कूली प्रक्रियाएँ उन्हें आधुनिकता के रंग में रंग देती हैं। यही वजह है कि पाठ्यपुस्तकों में स्थानीय विविधताओं को नकारकर सर्वत्र एकरूपता देखने-दिखाने की कोशिश नज़र आती है। पूरे प्रदेश में पहुँचने वाली इस पाठ्यपुस्तक में इस तरह की गतिविधि शामिल हो जाने से पाठ लिखने वाले विद्वानों की संवेदनशीलता और प्रदेश के बच्चों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति के बारे में उनकी जानकारी पर गहरे सवाल उठते हैं।

वर्ष 2011 की जनगणना के मुताबिक़, महाराष्ट्र में अनुसूचित जनजातियों की जनसंख्या तक़रीबन 1 करोड़ पाँच लाख थी, जो प्रदेश की कुल आबादी का साढ़े नौ फ़ीसदी थी। ठाणे, पालघर, नाशिक, धुळे, नन्दूरबार, पुणे, नागपुर, अमरावती, यवतमाळ, गोन्दिया, चन्द्रपुर और गढ़चिरौली जैसे ज़िलों में अनुसूचित जनजातियों की घनी बसाहटें हैं। अधिकांश जनजातीय समुदाय आधुनिकता, शहरी जीवन और बाज़ारवाद से दूर हैं। विद्यार्थियों में पर्यावरण के प्रति जागरूकता लाना ही अगर इस गतिविधि का उद्देश्य है तो फिर जन्मदिन जैसा कृत्रिम अवसर चुनने की ज़रूरत ही नहीं थी। प्रदेश में कई इलाक़ों में पानी की उपलब्धता कम है। गर्मियों के मौसम में मराठवाड़ा, खानदेश और विदर्भ में पानी की क़िल्लत होती है। लगाए गए पौधों को गर्मियों में ज़िन्दा रखने का इन्तज़ाम प्रदेश के सैकड़ों गाँवों में नहीं है। पर्यावरण संरक्षण एवं पौधारोपण पर किसी और तरह से भी तो बात हो सकती थी, जो प्रदेश के सभी अंचलों और समुदायों के बच्चों के लिए सहज और स्वीकार्य हो।

चित्र 2

इसी पाठ्यपुस्तक में जो अधिकांश चित्र हैं, वे लिबास, केशसज्जा, जूतों आदि से शहरी और मध्यमवर्गीय बच्चों के नज़र आते हैं। उदाहरणार्थ, पृष्ठ 3, 5, 6, 28, 50, 62 के चित्रों से ग्रामीण और शहरी ग़रीब बच्चे नदारद हैं। पृष्ठ 7 पर यश और उसके पालतू कुत्ते मोती की कहानी है, जिसमें यश का एक जूता खो जाता है। मोती, यश को उस जूते तक लेकर जाता है। इसी तरह पृष्ठ 13 पर अँग्रेज़ी भाषा में वार्तालाप सिखाने वाला एक अभ्यास है, जिसमें एक पिता और बेटी की संक्षिप्त बातचीत है। चित्र में मेज़पोश से सजी मेज़ पर एक केक रखा है और बोन चाइना की तश्तरियाँ। पाठ में बेटी अश्विनी अपने पिता से केक खाने की फ़रमाइश करती

है। हिदायत देते हुए पिता कहते हैं कि डिनर के बाद केक खाना और उसके बाद टूथब्रश से दाँत माँजना। जिस प्रदेश की तक़रीबन 55 फ़ीसदी आबादी गाँवों में गुज़र-बसर करती है, वहाँ पाठ्यपुस्तकों में बच्चों से केक खाने और टूथब्रश से दाँत माँजने को कहा जा रहा है। यह साफ़तौर पर शहरी मध्यम वर्ग के घर का
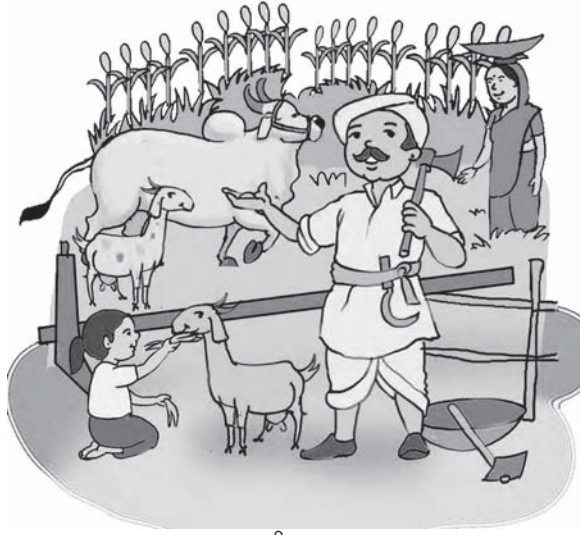
चित्र 3

चित्रण है जो इस पाठ्यपुस्तक को पढ़ने वाले प्रदेश के अधिकांश बच्चों को मयस्सर नहीं है।

ग्रामीण जीवन का जो चित्रण और वर्णन पाठ्यपुस्तकों में होता है, वह नितान्त काल्पनिक और एकरूपता लिए होता है। बानगी देखिए कि पृष्ठ 14 पर विद्यार्थियों से एक तस्वीर का वर्णन करने को कहा जा रहा है। तस्वीर में एक किसान अपने तमाम औज़ारों, हँसिया, फावड़ा, कुल्हाड़ी, हल और डलिया के साथ धोती, साफ़ा और कमर पर गमझा बाँधे मुस्तैद नज़र आ रहा है। पीछे घास का मैदान-सा है जिसमें शहरी ढब की लाल-हरी साड़ी लपेटे एक महिला है। आसपास मवेशियों का जमावड़ा भी है। यह किसान की स्टीरियोटाइप्ड परिकल्पना का सटीक चित्रांकन है। क्या कोई किसान इतने सारे औज़ारों को एक साथ लेकर खेत जाता है? बिरला ही कोई किसान होगा जो लम्बी धोती और पूरी बाँह वाली कमीज़ पहनकर फावड़ा, कुल्हाड़ी या हँसिए से काम करने के लिए खेत जाता हो।

भाषा की इस किताब में कई चीज़ों को समाहित करने की सुविचारित कोशिश नज़र आती है। आप इस सूची को देख सकते हैं :

वाद्य यंत्रों की जानकारी (पृष्ठ 29), फ़न्तासी और परिकथा (पृष्ठ 35-40), उपदेशपरक कथाएँ (पृष्ठ 13, 21-23, 44-46), कच्चे आम का पना बनाने की गतिविधि (पृष्ठ 50-51), पौराणिक कथा (*महाभारत* से, पृष्ठ 53-55), क्रिकेट, तीरन्दाज़ी, फ़ुटबाल, शतरंज जैसे खेलों का उल्लेख (पृष्ठ 55) हो या पौधे के अंग (पृष्ठ 43), टेलीस्कोप (पृष्ठ 60) जैसे विज्ञान से जुड़े पाठ, इन सबमें अनुसूचित जनजातियों की न तो छवि नज़र आती है, न ही उनका कोई ज़िक्र है जबकि प्रदेश की आबादी में इनका तक़रीबन दस फ़ीसदी हिस्सा है। पाठ्यपुस्तक निर्माण की प्रक्रिया में हालाँकि विषय विशेषज्ञों के साथ-साथ चन्द शिक्षक और ग़ैर-सरकारी संगठनों के प्रतिनिधि भी शामिल होते हैं, लेकिन उन्हें लेखन समिति में शामिल करना, पाठ्यपुस्तक के स्वरूप, विस्तार और हदों का फ़ैसला करना, पाठों का चयन या सम्पादन करना, चित्रों और भाषा की शैली आदि तय करना, यह सब प्रशासनिक प्रक्रिया है। पाठ्यपुस्तक निर्माण प्रक्रिया का लोकतांत्रिकरण नहीं हुआ है। लिहाज़ा बच्चों की बात पाठ्यपुस्तक तक पहुँचाना और उसमें शामिल करवाना एक लम्बी एवं दुरूह प्रक्रिया है।

किसी जनजातीय अंचल की बात किसी पाठ में शामिल हो भी जाए, तो वह अजीब, अवास्तविक और अतार्किक रूप में भी शामिल हो सकता है। उदाहरणार्थ, दूसरी कक्षा की ही मराठी माध्यम *बालभारती* में एक पाठ है 'झरीपाडा' (पृष्ठ 35-36)। पाठ में दिए विवरण में कहीं भी वारली समुदाय का नाम नहीं लिया गया है, जबकि वह उनके रहन-सहन के बारे में

है। उस पाठ में वारली चित्रकला का ज़िक्र भी है चित्र भी, लेकिन ये चित्र परम्परागत रूप से एक जनजाति बनाती है, इसका उल्लेख सोच-समझकर या शायद भूलवश टाल दिया गया है। पाठ्यपुस्तक निर्माता विद्वानों ने ऐसा क्यों किया होगा? वारली जनजाति की कोई बच्ची, जो जानती है कि मेरे घर-परिवार में परम्परागत रूप से इस तरह की चित्रकारी की जाती है, यह पाठ पढ़कर क्या महसूस करती होगी?

चित्र 4

हालाँकि, दूसरी कक्षा की मराठी माध्यम *बालभारती* में उसी कक्षा की अँग्रेज़ी माध्यम *बालभारती* के बरअक्स ग्रामीण परिवेश से जुड़े पाठ और चित्र तुलनात्मक रूप से ज़्यादा हैं। शहरी मध्यमवर्गीय परिवेश, परिवार और बच्चों का चित्रण तो है, पर साथ ही ग्रामीण परिवेश को भी पाठ्यपुस्तक में जगह मिली है।

चौथी कक्षा की अँग्रेज़ी माध्यम *बालभारती* में ईसप और जातक कथा है। इसमें चीन और रूस की एक-एक कहानी, जॉन रस्किन की बोधकथा और यहाँ तक कि सचिन तेन्दुलकर पर भी एक पाठ है, लेकिन भाषा की इस पाठ्यपुस्तक में महाराष्ट्र या भारत के किसी भी जनजातीय अंचल की लोककथा या लोकगीत नहीं है।

इस हाशियाकरण से एक तो यह सन्देश जाता है कि जनजातीय समुदायों द्वारा उम्दा साहित्य नहीं रचा गया है। दूसरा यह कि पाठ्यपुस्तक जिस भाषा-वर्ग के साहित्य को विद्यार्थियों के सामने प्रस्तुत कर रही है, वह अंगीकार करने योग्य है। साहित्य संस्कृति का वाहक होता है, अतीत और भविष्य की दोनों ही दिशाओं में। पाठ्यपुस्तकें अगर जनजातीय समुदाय और उनमें रचे गए साहित्य की अवहेलना करना जारी रखेंगी तो स्वाभाविक ही विद्यार्थियों के मन में जनजातीय संस्कृति के प्रति असम्मान का भाव क्रमशः दृढ़ होता जाएगा। अन्य समुदायों से आने वाले विद्यार्थियों के साथ-साथ जनजातीय समुदायों से आने वाले विद्यार्थी भी यह मानने लग सकते हैं कि अतीत में हमारे पुरखों ने गुणवत्तापूर्ण साहित्य की रचना नहीं की है, और इसलिए बेहतर साहित्य वही हो सकता है जो ग़ैर-जनजातीय संस्कृति में उपजा हो।

पाठ्यपुस्तकें हों या कक्षा में होने वाला ग़ैर-शैक्षणिक वार्तालाप, उसमें हम किस तरह के मूल्यों और धारणाओं को पोषित कर रहे हैं? ऊपर हमने देखा कि जिस परिवेश से कक्षा में बच्ची पहुँचती है, उसके प्रति पाठ्यपुस्तक में समझ का नितान्त अभाव है। जब समझ ही नहीं होगी तो संवेदनशीलता और समावेशीकरण कैसे होगा?

सभी को आधुनिकता के एकरूप साँचे में ढाल देना तो शिक्षा का लक्ष्य नहीं होना चाहिए न! हम अपने राष्ट्र की सांस्कृतिक विविधता पर नाज़ करते हैं, विशिष्ट मौक़ों पर विविधता में एकता का सगर्व उल्लेख भी करते हैं, लेकिन एकता के नाम पर एकरूपता थोपना क्या शिक्षा का उद्देश्य हो सकता है?

अमित कोहली घुमक्कड़ी करने और पढ़ने के शौक़ीन हैं। तक़रीबन 15 साल एकलव्य फ़ाउण्डेशन के साथ विविध स्तरों पर काम किया है। शिक्षा के इतिहास, डिस्कूलिंग एवं वैकल्पिक शिक्षा में विशेष रुचि है। अमित स्वयं को वैचारिक रूप से गाँधीजी के क़रीब पाते हैं।

सम्पर्क : amt1205@gmail.com

'पोंगल' के बहाने
असमानता और भेदभाव की चर्चा

माया मौर्य

बच्चों के निजी अनुभवों को लेकर कक्षा में सामाजिक मुद्दों पर बातचीत हमेशा एक तरह का तनाव पैदा करती है। कई बार बच्चे अपने अनुभवों को बयान करने में मुखर भी नहीं होते। यह भी है कि हर बच्चा अलग-अलग जीवन अनुभवों से गुज़रा होता है और विभिन्न सामाजिक मुद्दों को लेकर उसकी अपनी धारणाएँ और परिवारों से मिली मान्यताएँ अलग-अलग हो सकती हैं। ऐसे में बच्चों के अनुभवों पर बात करने का एक ज़रिया कोई घटना या किताब हो सकती है। इसके चलते कक्षा के तनाव को थोड़ा कम करने में मदद मिलती है और मुद्दों पर रचनात्मक बातचीत हो पाती है।

मध्य प्रदेश के भोपाल शहर की कच्ची बस्तियों में जनजातीय और दलित समुदाय के बीच शिक्षा का काम करने वाली 'मुस्कान' संस्था ने अभी कुछ वर्षों से प्रकाशन का काम भी शुरू किया है। जनजातीय समुदाय में प्रचलित क़िस्से, बच्चों के वास्तविक अनुभव और जेण्डर व बाल अधिकार को उन्होंने अपनी प्रकाशन सामग्री बनाया है। वर्ष 2020 में प्रकाशित ऐसी ही एक किताब है, *पोंगल*, जिसकी लेखिका हैं बामा। वे एक तमिल दलित नारीवादी लेखिका, शिक्षिका और सामाजिक कार्यकर्ता हैं। किताब में कला और सज्जा केरन हेडाक द्वारा की गई है। मूल तेलुगु कहानी का अँग्रेज़ी से हिन्दी अनुवाद अमिता शीरीन ने किया है और सम्पादन सी एन सुब्रमण्यम का है।

कहानी लम्बे समय से चली आ रही पोंगल की परम्परा पर सवाल उठाती है। पोंगल के त्योहार पर कामगार अपने मालिकों को काफ़ी सारी चीज़ें तोहफे स्वरूप देते हैं। इसके बदले मालिक उन्हें, पोंगल यानी मीठी खिचड़ी खाने को देते हैं। इस कहानी का मूल पात्र एसक्किमुत्थु इस परम्परा पर सवाल उठाता है। वह अपने पिता से कहता है कि हम केले का पूरा घौद, बड़ा कद्दू, एक मुर्ग़ी, ढेर-सा चावल, इतना कुछ मालिक को देते हैं, बदले में वे हमें 10 रुपए के चावल का पोंगल देते हैं। हम कभी अच्छा खाना नहीं खा पाते। यदि हम मालिक को यह सब न दें तो कम-से-कम 5-6 दिन ठीक से खाना तो खा पाएँगे।
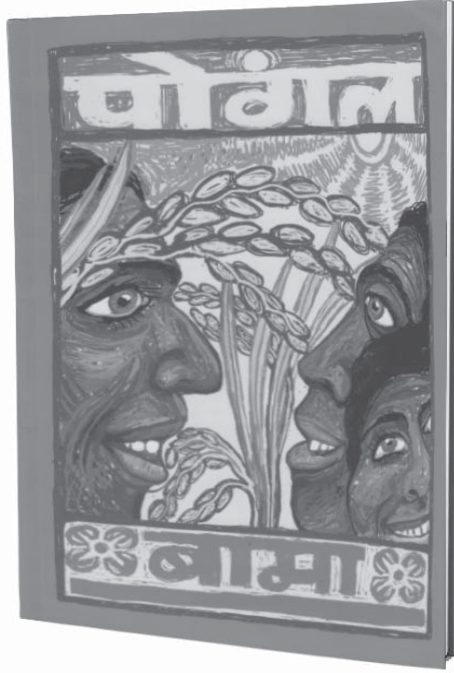
किताब के इस कथानक को देखते हुए लगा कि बच्चों के साथ इसे पढ़ा जाना चाहिए। भेदभाव के विषय पर चर्चा के लिए यह उपयुक्त किताब होगी। इसलिए मैंने बच्चों के साथ इसपर बातचीत की।

किताब पर शुरुआती 8 से 14 साल के बच्चों के साथ चर्चा

बातचीत की शुरुआत चित्रों से हुई। मैंने बच्चों को किताब का आवरण चित्र दिखाते हुए पूछा कि आपको इसमें क्या-क्या दिख रहा है? यह चित्र देखकर आपके मन में क्या-क्या बातें आती हैं?

बच्चों के जवाब इस प्रकार थे :

महक ने कहा, "पोंगल किसी जगह का नाम लग रहा है।"

एक अन्य बच्चे ने कहा कि किसी जाति का नाम लग रहा है।

कुछ और जवाब थे। बिट्टू ने कहा, "गेहूँ का नाम होगा। इस तरह का नाम तमिलनाडु की फ़िल्म में सुना है।"

सोनिया बोली, "चित्र में थोड़े ग़रीब लोग लग रहे हैं, आदिवासी जैसे।"

मैंने पूछा, "चित्रों को छूकर देखने में अच्छा लग रहा है? चित्र थोड़े अलग लग रहे हैं, मोटे-मोटे? क्या सच में यह लोग ऐसे दिखते हैं?"

महक ने कहा, "पहले चित्र अजीब लगे, पर जब कहानी पूरी पढ़ी और सुनी तो चित्र और लिखी बात जमने लगे। अब ये अच्छे लग रहे हैं। तमिलनाडु के गाँव ऐसे ही दिखते होंगे।"

कहानी सुनने के बाद चर्चा

कहानी सुनने के बाद बच्चों ने अपनी बातें कहीं।

"इस कहानी में जैसे पापा ने अलग-अलग काम बदले थे, वैसे हमारे पापा ने भी कई काम बदले। पहले हमारे पापा चेम्बर साफ़ करने का काम करते थे, उसके बाद उन्होंने ख़ुद की पान और गुटके की दुकान लगाई। पापा से कई सारे लोग पान और बीड़ी उधारी में लेते थे और कई दिनों तक उधारी चुकाते नहीं थे तो पापा ने वह काम बन्द कर दिया है। अब पापा एमएसीटी में सफ़ाई का काम करते हैं।"

"मेरे दादा भी सफ़ाईगिरी का काम करते हैं। हम भंगी के समाज के हैं। इसीलिए इसी तरह के काम हमारी जात वालों को मिलते हैं।"

तरुण ने कहा, "हमेशा ग़रीबों को सब पैरों की जूती समझते हैं। माडसामी को उस सेठ ने दुत्कार दिया, इसी तरह कई बड़े लोग ग़रीबों को दुत्कार देते हैं, उनकी इज़्ज़त नहीं करते।"

बिट्टू बोला, "पढ़ाई से उसकी सोच बदली है। स्कूल में अलग-अलग जगह के बच्चे होते हैं। सब आपस में अपनी मुश्किलें शेयर करते हैं। अगर उन्हें अच्छा लगता है वह भी, और बुरा लगता है वह भी। पढ़ाई से सोच बदलती है।"

महक ने कहा, "जब पिता ने कहा कि पोंगल भैंस की नाँद में फेंक दो, मैं बाज़ार से मछलियाँ ख़रीदकर लाता हूँ तो वह मुझे अच्छा लगा। क्योंकि एसक्किमुत्थु के पापा, मम्मी और भाई की जो बेइज़्ज़ती मालिक के घर हुई थी, वह उस पोंगल की खिचड़ी को फेंकने से थोड़ी कम हुई।"

साधना बोली, "पापा ने पहले तो बात नहीं मानी फिर बाद में मान ली, यह मुझे अच्छा लगा। ऐसे ही मेरे पापा भी करते हैं। कहानी असली लग रही है। हमारे मोहल्ले में कुछ लोग भेदभाव तो करते हैं पर मन से दिखाते नहीं हैं। जब हम नल पर पानी भरने जाते थे तो वह बार-बार नल को धोते थे, फिर पानी भरते थे, और हमें कहते थे तुम लोग नल गन्दा कर देते हो। साथ ही हमारे बर्तनों से अपने बर्तन बहुत दूर रख लेते थे। अब हमने घर पर ही नल लगवा लिया है। मैंने एक दिन आंटी के डिब्बे से पानी पी लिया तो वो पूरा डिब्बा फेंक कर चली गईं। मुझे बहुत बुरा लगा। पानी पीना इतनी ख़राब बात है क्या?"

महक ने कहा, "मैंने जब *बकरी की साइकिल* किताब से एक लड़की की कहानी पढ़ी कि कुछ लड़कियाँ कन्या में खाने गई थीं तो उन्हें अलग बिठाया गया और दूर से पानी पिलाया गया, वह पढ़कर मुझे बहुत बुरा लगा।"

बच्चे कई बार छोटे-छोटे भेदभावों को सहते और मन में रखते जाते हैं। वे इस भेद भाव को समझ भी नहीं पाते और दुखी भी होते हैं, लेकिन वे किसी से कह नहीं पाते। यह कहानी
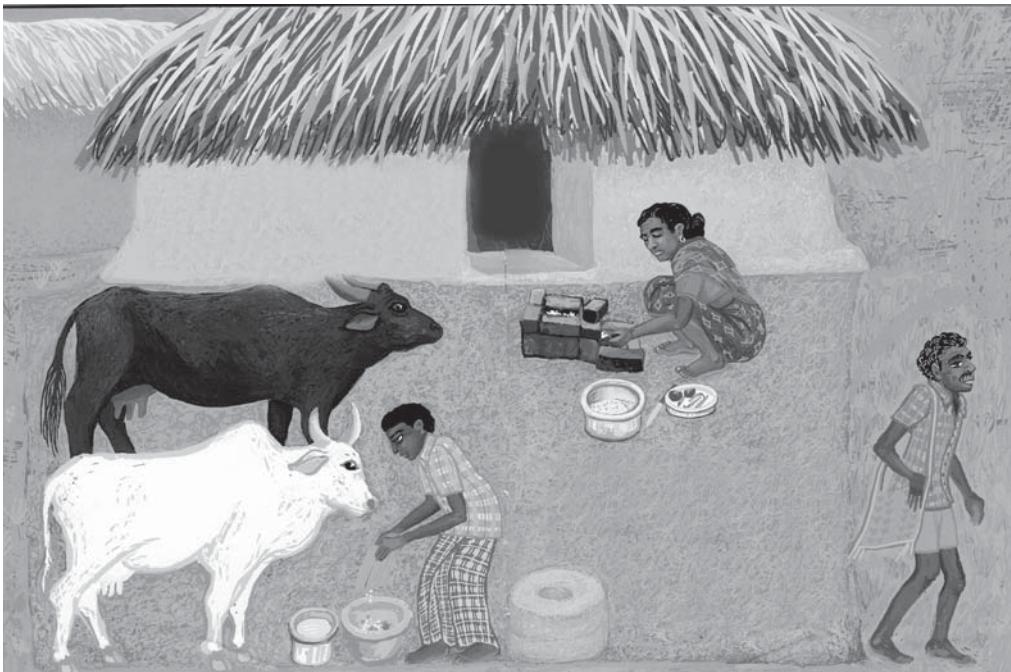
एक मौक़ा देती है बच्चों को उस परिस्थिति को बता पाने का, जहाँ उन्हें भेदभाव जैसा महसूस होता है। वे अपनी आहत भावनाओं को कक्षा में साझा कर पाते है, और ऐसे भेदभावों को लेकर अपने मन में उठने वाले प्रश्नों को रख पाते हैं, उनपर चर्चा कर पाते हैं।

वास्तविक जीवन में जिस तरह से काम को लेकर आमतौर पर उतार-चढ़ाव होते हैं और अलग-अलग कारणों से लोग काम बदल देते हैं, यह भी बच्चे समझ पाते हैं।

कहानी की भाषा सरल है। इसमें क्षेत्रीयता की झलक भी है, जैसे– कहानी के पात्रों के नाम और कुछ अन्य नाम तेलुगु संस्कृति की झलक देते हैं, कुछ नाम अलग से है, लेकिन पढ़कर समझ में आ ही जाता है कि वे किसी के नाम हैं। उदाहरण के लिए एलवरसु, एसक्किमुत्थु, राकम्मा और केले की घौद आदि। भाषा में भी बड़ी जाति, छोटी जाति का फ़र्क़ काफ़ी गहरा होता है और पूरी कहानी में यह कई जगह दिखाई पड़ता है। जैसे– मालिक के घर पहुँचते ही बाहर से ही कहना, पाँय लागू सरकार और जाते हुए विनम्रता से कहना कि सरकार हम जा रहे हैं। इसपर भी मालिक का रूखा-सा जवाब व व्यवहार।

बतौर पाठक मेरा अनुभव

मैं एक शिक्षिका हूँ। जब मैंने ख़ुद यह कहानी पढ़ी तब मेरी आँखों के सामने भी हमारे गाँव में होने वाले कुछ भेदभाव आ गए, जिनपर हमें कभी भी बातचीत करने का मौक़ा ही नहीं मिला।

हमारे गाँव में जब मेरी मम्मी और दादी पानी भरने जाती थीं तो पहले ठाकुर, सुनार आदि जाति के लोग पानी भरते थे, उसके बाद ही हम लोगों की बारी आती थी। हमें कई घण्टों तक वहाँ खड़े रहकर अपनी बारी का इन्तज़ार करना पड़ता था और वह लोग पूरा कुआँ बार-बार धोते थे। पहले तो समझ ही नहीं आता था कि ऐसा क्यों है? लेकिन जैसे-जैसे बड़े हुए तो कुछ समझ आने लगा और साथ-साथ ग़ुस्सा भी। मैं मम्मी से पूछती भी थी कि मम्मी, यह लोग ऐसा क्यों करते हैं। मम्मी यही बोलती थीं कि वह बड़ी जाति के हैं। यह बात मुझे अच्छी नहीं लगती थी और मैं बिना पानी भरे ही घर आ जाती थी। बाद में दादी और मम्मी पानी भरकर लाती थीं।

आज भी हमारे मोहल्ले या गाँव में हर छोटी-छोटी सी बात में जातिगत भेदभाव दिखता है, लड़ाइयाँ होती हैं और लोग जाति सूचक गालियाँ देते हैं। लेकिन बड़े लोग और कई बार हम भी यही सोचते हैं कि ये सब चलता है, कौन-सा उनके बोलने से हमपर असर पड़ेगा? या, हमारा क्या बिगड़ जाएगा?

लेकिन कहानी कहती है कि शिक्षा जातिगत व्यवस्था पर सोचने और सवाल करने के लिए एक हथियार का काम कर सकती है। जिस तरह से एसक्किमुत्थु सूझ-बूझ के साथ अपने पिता से तर्क कर पा रहा था, वह शिक्षा के कारण ही सम्भव हुआ। वह कहता है, "केवल थोड़े-से पोंगल के चावल और दस रुपए के

गमछे के लिए क्या हम इतने गिर गए हैं कि उन्हें 70–80 रुपए के बराबर का एक मुर्ग़ा, एक बड़ा कद्दू, 10 रुपए का गन्ना, केले का इतना भरा हुआ घौद और चार किलो चावल लेकर दें। अरे, अगर हम ख़ुद ये सब पकाएँ और खाएँ तो क्या ये हम सबके लिए चार–पाँच दिन के लिए पूरा नहीं होगा?" उसे डर नहीं था कि आगे क्या होगा। उसे पिता के ग़ुस्से का भान था पर वह अपनी बातों से अपने माता–पिता और भाई को इस तरह की चली आ रही बेकार परम्परा को मानने से रोकना चाह रहा था। सही बात तो यही है कि जब घर में खाने को न हो, तब भी अपना पेट काटकर या भूखे रहकर मालिक को अपने हिस्से का सामान देना क्यों ठीक है? (मालिक के बहुत सम्पन्न होने के बावजूद) इतना सारा सामान देने पर भी एक गमछा और बदले में दुत्कार ही मिलता है। एसक्किमुत्थु भूतकाल और भविष्य की तुलना करके पिता को समझाना चाहता है। वह जानता है कि इन मसलों पर बातचीत होनी और ग़ुस्सा दिखाना भी ज़रूरी है। वह अपने पिता को वस्तुस्थिति से परिचित कराता है और अन्ततः, एसक्किमुत्थु अपने माता–पिता और भाई–बहन को भी उस परम्परा के बारे में सोचने के लिए मजबूर कर देता है। उसे उस भेदभाव की ज़िन्दगी से उबरने की एक छोटी किरण दिखती है।

इसी तरह पिता जानते हैं कि ऊँची जाति या मालिक के आगे झुकना और उनका कहना मानना ज़रूरी है और मजबूरी भी। पिता कहते हैं कि हममें इतनी ताक़त नहीं है कि हम उनके ख़िलाफ़ जाएँ या बग़ावत करें। इसलिए वो एसक्किमुत्थु को समझाना चाहते हैं कि वे मालिक को सामान देकर सही कर रहे हैं। वे कहते हैं, "इस लड़के को जीने का तरीक़ा पता नहीं है," क्योंकि वह उनकी कही बातों को नहीं मानता है। लेकिन साथ ही साथ वह यह भी जान रहे हैं कि जो हो रहा है, वह सही नहीं है।

सामाजिक मुद्दों पर बच्चों के साथ किसी–न–किसी माध्यम से बातचीत होते रहना बहुत ज़रूरी है। कहानी की किताबें इसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं और ये कहानियाँ कहानी किसी दूसरे की ज़िन्दगी के बहाने अपनी ज़िन्दगी और अपने समाज पर नज़र डालने का ज़रिया बनती हैं।

माया मौर्य ने पिछले 15 साल तक मुस्कान संस्था, भोपाल के साथ एक शिक्षिका के रूप में कार्य किया है। वे बस्ती सैंटर पर कामकाजी और स्कूल ड्रॉपआउट बच्चों को खेल–खेल में मनोरंजक तरीक़े से सीखने–सिखाने का कार्य करती रही हैं। उन्हें बच्चों के बीच रहने और उन्हें पढ़ाने में ख़ुशी मिलती है व बच्चों से बहुत कुछ सीखती हैं। उन्हें किताबें पढ़ने में रुचि है। माया मौर्य वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल, मध्य प्रदेश में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : mayamourya@azimpremjifoundation.org

विज्ञान, वैज्ञानिक सोच और वैज्ञानिक मानसिकता

हृदय कान्त दीवान

हृदय कान्त दीवान का यह वक्तव्य, पाठशाला के 13वें अंक में प्रकाशित गौहर रज़ाजी के वक्तव्य के क्रम में है। वे गौहरजी द्वारा कही गईं कुछ मुख्य बातों को रेखांकित करते हैं और उनके निहितार्थ रखते हैं। इस वक्तव्य में, वे बेहतर विज्ञान शिक्षण को कैसे समझे और बेहतर विज्ञान शिक्षण में एक शिक्षक की क्या भूमिका होती है या क्या होनी चाहिए, इसपर अपने विचार रखते हैं। सं.

मैं यहाँ मूलतः, गौहर (गौहरजी के लेख के लिए देखें *पाठशाला* का अंक 13) ने जो कहा, उसमें से दो-चार बातें दोहराना चाहता हूँ। मुझे लगता है उनकी कही ये बातें बहुत ही महत्त्वपूर्ण हैं। पहली यह कि सवाल पूछना और नए सवालों को बनाना व बनाए गए नए सवालों को महत्त्वपूर्ण मानना ज़रूरी है। कहने में यह बहुत आसान लगता है, परन्तु विज्ञान की कक्षा और ज़िन्दगी की कक्षा में ये कर पाना बहुत मुश्किल है, और किसी भी व्यवस्था में, स्थिति में कर पाना मुश्किल है। जैसे– घर में, ख़ासतौर पर जब कोई मेहमान आया हो, अगर एक बच्ची ये सवाल पूछे कि चाय मैं ही क्यों बनाती हूँ? यह एक महत्त्वपूर्ण सवाल है और उसका जवाब देना भी मुश्किल है।

होशंगाबाद विज्ञान शिक्षण कार्यक्रम में 'सवालीराम' नाम का एक पात्र गढ़ा गया था। बच्चे उसको चिट्‌ठी लिखते थे और जो भी सवाल उनके दिमाग़ में आता था पूछते थे। यह सवाल कक्षा में पढ़ाए जा रहे विभिन्न विषयों से हो सकता था या किसी और अनुभव से भी। एक बार, एक बच्चे ने पूछा था, "जब हम ककड़ी खाते हैं तो उसके पहले, उसके ऊपर के सिरे को काटकर ककड़ी पर रगड़ते क्यों हैं? कहते हैं कि रगड़ने से उसकी कड़वाहट निकल जाती है। क्या ऐसा होता है?" हमने बहुत-से जीव वैज्ञानिकों और पौध शास्त्रियों से यह सवाल पूछा तो उनको कुछ समझ में नहीं आया। एक अन्य सवाल, यह भी एक बच्चे ने ही पूछा, "बूढ़े लोगों को खाना खाते वक़्त पसीना क्यों आता है?" अब इस सवाल का आप कैसे जवाब देंगे? एक और सवाल एक बच्ची ने पूछा, "जब महिलाओं की शादी हो जाती है तो उनके माँग में सिन्दूर लगा देते हैं, बिन्दी लगा देते हैं, पर पुरुषों की शादी हो गई है यह कैसे पता लगे?" इस सवाल में एक सामाजिक प्रक्रिया पर चिन्ता रखी गई है। यह सवाल सामाजिक विसंगत विचारों से जुड़ा है और इसीलिए बहुत मुश्किल भी है।

अकसर, यह आसानी से कह दिया जाता है कि वैज्ञानिक मानसिकता या वैज्ञानिक सोच कक्षा के बाहर जानी चाहिए। पर हम देख सकते हैं कि यह कर पाना आसान नहीं है व इसके शायद कई निहितार्थ हैं। इसलिए जब कोई कहता है कि आज़ाद इंसान वो है जो सवाल पूछ सकता है, तो कई बार सवाल ऐसे होते हैं कि वे पूरी सामाजिक संरचना या जो व्यवस्था है, उसके प्रति बहुत गम्भीर चिन्ता व्यक्त करते हैं। और इससे हमारे लिए यह सवाल उभरता है कि ऐसे सवालों से कक्षाओं में, परिवारों में,

समाज में कैसे जूझें और उनके हल ढूँढ़ने की कोशिश करें। परेशानी यह है कि ऐसे सवालों को पूछना और उन पर सोचने और चर्चा करने का तरीक़ा हमारे आज के समाज में, दुनिया में और संकीर्ण होता जा रहा है। इसपर सोचने की ज़रूरत है कि हम इस बात को कैसे समझने व मानने लगें कि किसी दूसरे व्यक्ति के देखने का नज़रिया हम से फ़र्क़ हो सकता है? और बात देखने के नज़रिए की है, दोनों ही व्यक्तियों के नज़रिये विचार करने योग्य हो सकते है।

जैसा कि ऊपर कुछ उदाहरण दिए, पूछे जाने वाले सवाल कई तरह के हो सकते हैं। परिवार में, कक्षा में, हर विषय में, ऐसे सवाल होते हैं जिनका जवाब देना आसान नहीं होता। यह भी कि कई वयस्कों की तरह ही कई वैज्ञानिकों व शिक्षकों के लिए भी यह मानना बहुत मुश्किल है कि उनको कोई चीज़ नहीं आती। और ये मान पाना कि दूसरे व्यक्ति जो कह रहे हैं, जो तथ्य अथवा तर्क रख रहे हैं, उनपर हमारी अभी की समझ की थ्योरी फ़िट नहीं बैठती। कई बार चलते-चलते आसानी से कह दिया जाता है कि अगर कोई यह बता दे कि आइन्स्टाइन की थ्योरी $E = mc^2 + X$ है यानी उसमें कोई कमी बता दे, तो उसको नोबल प्राइज़ मिल जाएगा। लेकिन, नोबल प्राइज़ मिलने से पहले बहुत मशक़्क़त होती है। आइन्स्टाइन को जो समझते हैं, जो उनके काम का आदर करने वाले हैं, विज्ञान जानने वाले हैं, वो सब इस समीकरण पर ख़ूब सारे सवाल पूछते, पर्चे भेजते और इस कथन को हर तरह से जाँचा जाता, परखा जाता। महत्त्वपूर्ण बात यह है कि विज्ञान में दूसरे के मत के प्रति आदर रहता है। नए मत को ईमानदारी से सुनना और उसका आदर करना बहुत ज़रूरी है। ऐसा नहीं है कि इस तरह का खुलापन पहले धर्म के दर्शन में नहीं था। इंसान के उद्‌गम, जीवन लक्ष्य व नैतिक व्यवहार पर भी एक समय पर्याप्त चर्चा होती थी और मतों पर वाद-विवाद भी। मुझे लगता है, ये बात जहाँ विज्ञान के लिए सही है वहीं सोचने के अन्य नज़रियों के सन्दर्भ में इस पर विचार ज़रुरी है। हम एक ऐसे देश में रहते हैं, जिस देश में सवालों पर शास्त्रार्थ होते थे व बहसें होती थीं। एक समय में कई तरह के मत, एक साथ हमारे बीच रहते थे और इन प्रश्नों पर भी लोग लगातार सोचते थे। आपको नचिकेता की कहानी याद होगी। हमें समझना ज़रूरी है कि ये जो ज्ञान को बन्द करने का आतंक है, ये किसी भी क्षेत्र में उचित नहीं है, चाहे वो इस तरह से सोचने के बारे में हो कि सृष्टि की रचना कैसे हुई? या सृष्टि की रचना क्यों हुई?

चित्र : प्रशांत सोनी

ये सवाल विज्ञान के दायरे में, धर्म और दर्शन के दायरे में भी हमेशा खुले ही रहने चाहिए। सृष्टि की रचना कैसे हुई और क्यों हुई, इन दोनों सवालों के दायरे अलग हैं। लेकिन दोनों सवालों के बारे में सोचना ज़रूरी है। जैसे– मुझे अभी भी यह सवाल पूछना महत्त्वपूर्ण लगता है कि अगर भगवान ने दुनिया की रचना की तो इतनी ख़राब क्यों की? क्या वो इतना ख़राब कलाकार है? क्या वे अच्छाई से दुनिया नहीं बना सकते थे जिसमें सभी लोग ख़ुश रहें, जिसमें सुन्दरता हो, सब लोगों को बराबरी का एहसास हो। क्या ज़रूरत है ऐसी दुनिया बनाने की, जिसमें इतना दुख है, पीड़ा है, तनाव है, मार-काट है। ये सवाल मैं लगातार

अपने-आप से पूछता हूँ, और मुझे लगता है इस सवाल पर बातचीत होनी चाहिए। ये नहीं कह सकते कि आप क्यों यह सवाल पूछते हैं। आप ये भी नहीं कह सकते कि घर में जब बाहर से कोई आएगा तो लड़कियाँ ही चाय बनाएँगी। और इसपर सवाल नहीं उठाया जाना चाहिए क्योंकि ये हमारी संस्कृति का हिस्सा है। यह भी नहीं कि यह ही उचित है क्योंकि हमारे देश में ये अच्छी बात मानी जाती है। कई संस्कृतियाँ हैं, लगभग हर जगह ऐसी संस्कृतियाँ हैं जिनमें यह बात सही नहीं मानी जाती है। मुझे लगता है कि कहीं-न-कहीं हमें इस चीज़ पर बात करनी ही पड़ेगी कि हम जिसको कहते हैं कि हमारा ट्रेडिशन है, हमारे संस्कार हैं, वो संस्कार क्या सचमुच में हमारे हैं या थे? उनके हमारे होने का अर्थ क्या है? या हमें कुछ दिया जा रहा है और बताया जा रहा है कि हमारे संस्कार हैं, किसी छोटे प्रभुत्व वाले तबक़े के थोपे हुए विचार हैं जो हमें और समाज को जड़ कर देना चाहते हैं। जो वास्तव में हमारे सबके, सामान्य इंसानों के संस्कार हैं ही नहीं? इसलिए बहुत ज़रूरी है कि हम विनम्र भी बनें और साहसी भी। सवाल भी खुलकर पूछें और दूसरे के मत भी ध्यान से सुनें। अगर आप विज्ञान के बारे में और ज़िन्दगी के बारे में सोचेंगे तो दो चीज़ें ज़रूरी हैं– सवाल पूछने का साहस करना और दूसरे की बात सुनने की विनम्रता होना। उसी से आप अपने बारे में कह सकेंगे कि आप मज़बूत हैं। मज़बूत होने के लिए संसाधनात्मक अथवा शारीरिक शक्तिशालिता की जगह आज़ाद सोच व निर्भीकता ज़रूरी है। इसीलिए हमें दुआ करनी चाहिए कि हम कह पाएँ, हम हैं आज़ाद। आप तभी अपने-आप को आज़ाद महसूस कर सकते हो जब आप अपने-आप को नया सीखने के लिए तैयार कर सकते हों, अपने-आप में यह शक्ति महसूस कर सकते हों कि मैं जो जानता हूँ वो जानता हूँ और जो नहीं जानता वो नहीं जानता। पर उसे चाहूँ तो सीख सकता हूँ।

मुझे लगता है कि ये दो बातें गौहर की बातों से निकलकर आती हैं, ज़रूरी हैं। पहली, हमें सवाल पूछना बन्द नहीं करना चाहिए, और हमें सवाल पूछने का दायरा लगातार बढ़ने देना चाहिए। इस बात से डरना नहीं चाहिए कि हमें जवाब नहीं आता, क्योंकि जवाब तो असल में हमें किसी चीज़ का भी नहीं आता।
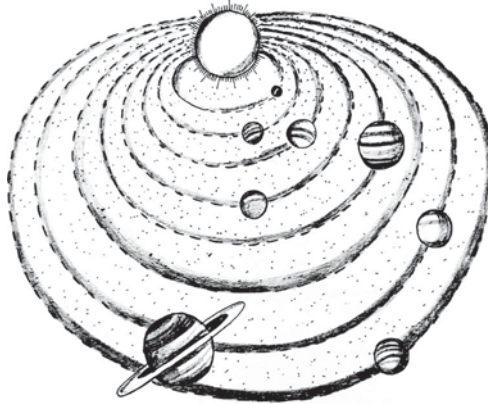
चित्र : हीरा धुर्वे

आप मानेंगे कि सौ साल पहले जो लोग दावे से कहते थे कि पृथ्वी ऐसी है, और ब्रह्माण्ड ऐसे बना। आज एक पूरी नई कल्पना हमारे सामने है। इस पूरी कल्पना का कुछ हिस्सा हमारे मन में अब हमेशा बना ही रहेगा। मसलन, इंसान पूरे ब्रह्माण्ड में कितनी छोटी-सी हस्ती है, फिर भी वो अपने-आप को कितना बड़ा मानता है। ब्रह्माण्ड का जन्म कैसे हुआ, जीवन की शुरुआत कैसे हुई, क्या पृथ्वी के बाहर भी जीवन है, जैसे बहुत-से सवाल हैं। इनके कुछ जवाब हैं और इन जवाबों की कुछ बातें तो नहीं जाएँगी पर इन सबपर विवाद हो सकता है। हम विज्ञान में आज जो मानते हैं उसपर भी विवाद है। जो बातें गौहर ने बताईं, जैसे कि, एक प्रकार के पौधे व प्राणी जीवन के पृथ्वी पर बनने में, अमुक हज़ार साल लगे, उसमें यह बदल सकता है कि किसी परिवर्तन में 370 हज़ार साल लगे या फिर 375

हज़ार साल। यह बहस जारी है कि भौतिक जगत में जो फ़ोर्सेस हैं, वे चार अलग-अलग प्रकार की बुनियादी फ़ोर्सेस हैं या फिर असल में सभी एक ही फ़ोर्स के रूप हैं। अभी भी इस बात पर बहुत बहस है कि जिन चार अलग-अलग फ़ोर्सेस की बात बार-बार करते हैं वो चार फ़ोर्सेस नहीं हैं, वो असल में एक ही फ़ोर्स है। बहुत लोग इसपर भी शोध कर रहे हैं। और हो सकता है, सौ साल बाद अगर ये जिरह फिर हो और गौहर की बजाय कोई और यह बताए कि फ़ोर्स तो एक ही है, या कुछ और नया बताए तो वो एक नई कल्पना आपके सामने रखेगा। मुझे लगता है कि ये जो बात है कि ज्ञान बदलता है, ज्ञान आगे बढ़ता है, इंसान के बढ़ने के साथ बदलता है, इस बात को हमें नहीं भूलना चाहिए। आगे का भविष्य इस बात से तय होगा कि हम सब कितने नए ढंग से, कितनी स्वतंत्रता से सवाल पूछकर नए जवाब ढूँढ़ने के लिए आगे बढ़ सकते हैं।

भारत का संविधान

उद्देशिका

हम, भारत के लोग, भारत को एक **संपूर्ण प्रभुत्व-संपन्न समाजवादी पंथ-निरपेक्ष लोकतंत्रात्मक गणराज्य** बनाने के लिए तथा उसके समस्त नागरिकों को:

सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक **न्याय**,

विचार, अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म
और उपासना की **स्वतंत्रता**,

प्रतिष्ठा और अवसर की **समता**
प्राप्त कराने के लिए,

तथा उन सब मे व्यक्ति की गरिमा और
राष्ट्र की एकता और अखंडता
सुनिश्चित करने वाली **बंधुता** बढ़ाने के लिए

दृढ़संकल्प होकर **अपनी इस संविधान सभा में** आज तारीख 26 नवंबर, 1949 ई. (मिति मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, संवत् दो हजार छह विक्रमी) को **एतदद्वारा इस संविधान को अंगीकृत, अधिनियमित और आत्मार्पित करते हैं।**

दूसरी बात जो मैं कहना चाहता हूँ, उसका ज़िक्र भी पहले हुआ है, वह यह कि जब हमने अपना संविधान बनाया था, हमने कहा था कि इस संविधान को हम अपने-आप को समर्पित करते हैं। यह याद करना बहुत महत्त्वपूर्ण है कि हम देश के लिए नहीं हैं; देश हमारे लिए है; हम ही देश हैं। हमारे बाद, हमारे से पहले देश नहीं है। हमारे बिना भी देश नहीं है। हम, यानी इस देश में रहने वाले, यानी इस देश के नागरिक। हमको देश के लिए बलिदान देना है। इसका मतलब है हमें, हमारे लिए ही बलिदान देना है, हमारे साथियों के लिए बलिदान देना है क्योंकि देश हम ही हैं। बाउंड्री अगर बदल जाती है तो हम नहीं बदलते। मान लीजिए, ग्लोबल वार्मिंग से कुछ हिस्सा पानी में डूब जाता है, तो भारत की सीमा थोड़ी-सी सीमित या संकुचित हो जाएगी, लेकिन हम लोग, जो भारत में हैं, संकुचित नहीं होंगे। मुझे लगता है, यह समझना बहुत ज़रूरी है कि हम ही देश हैं, और इसमें हमारे आसपास जो लोग हैं वही हमारे देशवासी हैं। उनका भला और हमारा भला देश का भला है। देश का भला कुछ ऐसी अमूर्त चीज़ नहीं है, जिसके बारे में अमूर्तता से हमें सोचना है। ऐसा नहीं है कि अमूर्तता से सोचकर हम यह मानें कि देश हमसे अलग है, और देश का भला इसी में है कि हम सब लोग कम खाएँ, बन्द व छोटे कमरों में रहें और देश की पूँजी बढ़ती रहे एवं कुछेक लोगों के पास व उनके एवं सत्ता के उपयोग के लिए केन्द्रित होती रहे। देश का भला हमारे भले से है। जो सामूहिक भला है हमारा, वही देश का भला है, इस चीज़ के बारे में भी हमें सोचना चाहिए।

ये सवाल हमें पूछना चाहिए कि हमने संविधान में किन-किन के बारे में सोचा था? हमने क्या-क्या वायदे एक दूसरे से किए थे? क्या हम उन वायदों को पूरा कर पाए? और उन वायदों को पूरा करने में हमारी क्या ज़िम्मेदारी है? यह भी, क्यों ये वायदे किए थे कि हम लोग एक दूसरे को इज़्ज़त देंगे और क्यों ये वायदे
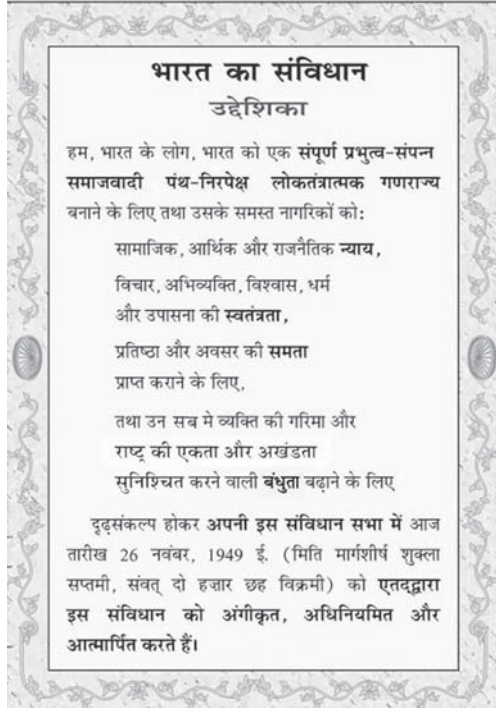
किए थे कि हम लोग आज़ाद बनेंगे? जिस सेन्स में गौहर ने कहा कि हम आज़ाद बनेंगे, उस सेन्स में, एक लोकतांत्रिक देश में नागरिकों का आज़ाद होना क्यों ज़रूरी है? उस आज़ादी का अर्थ क्या है? आज़ादी इस सेन्स में कि हम स्वतंत्रता से सवाल पूछ सकें, हिम्मत से अपनी बात कह सकें। हम यह बात मान सकें कि हम जो बात कह रहे हैं वो शायद सही नहीं है, और हम नया सीखने के लिए शिक्षक के रूप में, व्याख्याता, बच्चे के रूप में, नई बात सीखने के लिए भी तैयार हों। ये चार-पाँच बातें बहुत ज़रूरी हैं हमारे लिए।

अब मैं तीन-चार सवाल आपके सामने रखता हूँ जिनमें ये बात है कि सुनी-सुनाई बात पर संशय करना आवश्यक है। जब हम होशंगाबाद गए, 1970 की बात है, उस समय वहाँ पर यह मान्यता थी कि मेंढक पहली बारिश के साथ आसमान से गिरते हैं। लोगों की यह भी मान्यता थी कि मोरनी, मोर के आँसू पीकर गर्भवती हो जाती है। इस मान्यता को ग़लत साबित करना सामान्य सन्दर्भों में बहुत मुश्किल था, लेकिन मेंढक का आसमान से गिरना, बात लोग धीरे-धीरे भूल गए। लेकिन जैसा मैंने कहा, कुछ बातें ज़्यादा मुश्किल हैं। मुझे नहीं पता कि आप लोग कितना मानते हैं कि सिर अगर गन्दा हो तो उसमें जूँ पैदा हो जाती हैं। यहाँ लोगों के चेहरों को देखकर लगता है कि शायद बहुत-से मानते हैं, कुछ मना कर रहे हैं, कुछ संशय में हैं कि अगर मैं पूछ रहा हूँ तो यह बात ग़लत ही होगी। ये बड़ी दुविधा है कि हमें न तो सही पता है न ग़लत, लेकिन फिर भी हम ऐसी बहुत-सी बातों को मानते हैं। उन्हें जाँचने के बारे में सोचते भी नहीं।

चित्र : हीरा धुर्वे

असली बात यह है कि जूँ साफ़ सिर में भी हो सकती है और गन्दे सिर में भी, क्योंकि ये अण्डे से आती है। यदि आपके सिर में अण्डे आ गए हैं, किसी व्यक्ति के साथ या किसी कपड़े से आ गए तो आपके सिर में अच्छे-ख़ासे शैम्पू के बावजूद जूँ आ जाएगी। लेकिन सफ़ाई व ग़रीब और अलग ढंग से जीने वाले लोगों को दूर रख पाएँ इस कारण से यह धारणाएँ हटाना मुश्किल है। इसीलिए मैं ये कह रहा हूँ कि सुनी-सुनाई बात पर संशय करें और उसको जाँचें। हमारे सामाजिक ढाँचे में यह आम विचार है कि लड़कियाँ गणित और विज्ञान नहीं सीख सकतीं। ये भारत ही नहीं, पूरी दुनिया में है। अच्छे-ख़ासे बड़े-बड़े अध्येता समूहों ने, वैज्ञानिकों की सोसाइटियों ने वैज्ञानिक महिलाओं को जगह नहीं दी। मैडम क्युरी का पूरा काम उनके पति के नाम से छापा गया। ये मान्यता ही नहीं थी कि महिलाएँ विज्ञान कर सकती हैं।

अभी भी, अगर आप किसी इंटरव्यू में चली जाएँ तो यह यक़ीन नहीं कि इस बात का असर आपके बर्ताव पर नहीं पड़ेगा। यदि आप महिला हैं तो मुझे मालूम नहीं कि आप किसी वैज्ञानिक शाला, यथा आईआईएसईआर या किसी बड़ी आईआईटी में चली जाएँ तो आपके काम को बराबर की जगह मिलेगी। महिलाओं की विज्ञान में बराबरी के इस मसले पर अभी भी बहुत शोध हो रहे हैं, लेकिन अभी तक के शोध यही दिखाते हैं कि अभी भी बहुत सम्भावनाएँ हैं कि यही माना जाएगा कि यह काम महिला तो नहीं कर पाएगी। महिलाओं के प्रति इस रवैए का कोई आधार नहीं है। इसके सही होने का कोई प्रमाण नहीं है, पर इस प्रश्न को जाँचने को भी

कोई तैयार नहीं है। सभी प्रमाण इसके ख़िलाफ़ ही जाते हैं।

दसवीं की परीक्षा ले लीजिए या फिर बोर्ड की बारहवीं की परीक्षा या कॉलेज की परीक्षाएँ ले लीजिए; लड़कियाँ ही अव्वल आ रही हैं। हमारे बीएससी के बैच में लड़की ने ही टॉप किया था। हमें कोई शर्म नहीं आई थी क्योंकि हम जानते थे कि वो हमसे ज़्यादा होशियार है। लेकिन अगर उसको किसी वैज्ञानिक वेधशाला में अपॉइंटमेंट के लिए या किसी कॉलेज में व्याख्याता के लिए भी जाना होता तो मुझे लगता है मेरा चांस उससे बेहतर होता, क्योंकि ये माना जाता है कि लड़कियाँ विज्ञान नहीं कर सकतीं। ये सारे तथ्य हैं जिनपर हमें सवाल पूछने की ज़रूरत है। क्यों ऐसे बहुत-से तथ्य हम मानते हैं?

चित्र : हीरा धुर्वे

एक ज़माने में ये भी माना जाता था, मुझे मालूम नहीं है कि आप लोग इसे अब मानते हैं या नहीं, कि गोरे लोग ज़्यादा सुन्दर होते हैं। बहुत-से लोग यही मानते रहे हैं। इसीलिए बेचारे कृष्णजी को काला बनाना पड़ा। बहुत सारे गाने भी ऐसे हैं कि काले भी महत्त्वपूर्ण होते हैं। यह भी मान्यता रही है कि गोरी चमड़ी वाले दिमाग़ से ज़्यादा तेज़ होते हैं। बहुत शोध किया ये दिखाने के लिए कि उनके दिमाग़ का साइज बड़ा होता है। दुर्भाग्य से निष्कर्ष यह नहीं निकला। कालों का दिमाग़ और सिर का साइज बड़ा निकल आया। फिर उन्होंने कहा, नहीं, ये कुछ और है। वज़न नापना पड़ेगा। उन्होंने अटकलें लगाकर कई तरीक़े से यह किया किन्तु सब असफल रहा। ये स्टीफ़न गोल्ड अपनी किताबों में कई बार लिखते हैं। एक का नाम है, *द मिस मेज़र ऑफ़ मैन* और अगर इस किताब को पढ़ें (स्टीफ़न गोल्ड की किताब) जो आईक्यू के बारे में है, तो आप ये जान जाएँगे कि रंग से बुद्धिमत्ता का आकलन नहीं होता। फिर भी हमारे बीच में आईक्यू टेस्ट है, आईक्यू की जाँच है और आईक्यू के आधार पर निर्णय लेते हैं। मुझे लगता है वैज्ञानिक और वैज्ञानिक सोच के ऊपर छोटी-छोटी चीज़ों में हम सबको लगातार सवाल पूछने की ज़रूरत है।

अभी छत्तीसगढ़ का रिजल्ट आया है। अब वैसा रिजल्ट आना तय ही था क्योंकि जिस तरह से परीक्षा ले रहे हैं, जिन बच्चों की परीक्षा ले रहे हैं, उस परीक्षा में उस परिस्थिति का कोई सवाल ही नहीं है जिसमें वह जी रहे हैं। यह परीक्षा राष्ट्रीय स्तर की है। राज्य के स्तर पर राज्य के अनुकूल परचा बने और राज्य के अनुकूल जाँचना हो और राज्य की परिस्थिति के हिसाब से सोचने दीजिए। असल में तो यह स्कूल के स्तर पर, उसकी परिस्थिति के अनुसार ही होना चाहिए। ग़ैर-बराबरी वाले व अलग-अलग पृष्ठभूमियों वाले बच्चों का एक ही तरह का आकलन तुल्य नहीं है। लेकिन यह टेस्ट होंगे, हो रहे हैं, क्योंकि पूरी दुनिया में बताना है कि भारत का क्या स्थान है? अरे, भारत कोई एक है क्या? कोई भी देश क्या एक पैमाने से मापा जा सकता है?

दिल्ली के संस्कृति विद्यालय में, जिसमें विशेष तरह के बच्चे हैं, जो विशेष पृष्ठभूमियों

से आ रहे हैं, वैसे ही बच्चे पढ़ रहे हैं। इसके विपरीत, होशंगाबाद के दुर्गम गाँव के एक स्कूल में बिलकुल अलग विशेषता लिए बच्चे आते हैं। इनकी एक ही तरह से जाँच कैसे होगी? मुझे लगता है कि इसमें जो ग़ैर-वैज्ञानिकता है वो हमारे जीवन के हर हिस्से में है। इसको विज्ञान की क्लास से बाहर निकालना तो अपेक्षाकृत बहुत सरल है, किन्तु जीवन से नहीं (हालाँकि जिन लोगों ने इसे विज्ञान की कक्षाओं से निकालने का प्रयास किया है, वे कहेंगे कि वह काम बहुत कठिन व जटिल है, किन्तु सामान्य जीवन में व्याप्त ग़ैर-वैज्ञानिकता से फिर भी बहुत सरल है), और मैं सिर्फ़ आपसे यह आग्रह करूँगा कि थोड़ा इस बारे में सोचिए।

आजकल व्हाट्सएप में भी बहुत सारे 'फैक्ट्स' आते रहते हैं। उस हर फैक्ट को पकड़ने का सोचना चाहिए। आप विवेकानन्द के बारे में कई कहानियाँ बना सकते हैं, नेहरू के बारे में बना सकते हैं, दयानन्द सरस्वती के बारे में भी कहानियाँ बना सकते हैं, किन्तु उनसे उन्होंने जो कहा और जो किया, उसका महत्त्व कभी कम नहीं होगा। और उनसे जो हम सीख सकते हैं वो कम नहीं होगा। आजकल सूचनाओं का अम्बार-सा है, लेकिन क्या ये तथ्य और सूचनाएँ सत्य हैं, नहीं हैं, सत्य हैं तो किस हद तक, उसके प्रति सचेत रहने की ज़रूरत है। इसके बारे में व हर चीज़ के बारे में हमें सोचने की ज़रूरत है। मसलन, कल ही एक मैसेज मैंने पढ़ा कि एक जामुन की डण्डी अगर आप पानी की टंकी में डाल देंगे तो आपको पानी साफ़ करने की ज़रूरत नहीं। कृपया इस तरह के सन्देशों को सही मानकर इनका इस्तेमाल मत करना। यह सब कहने वाले वैज्ञानिक और इनको बग़ैर सोचे, बग़ैर जाँचे भेजने वाले बिलकुल ग़ैर ज़िम्मेदार हैं। इसी तरह के कथन वैक्सीनेशन के बारे में भी हैं और स्वास्थ्य सम्बन्धी पहलुओं के बारे में भी। आजकल फॉरवर्ड होने से बहुत आसान हो गया है। कुछ भी फॉरवर्ड कर देने का विकल्प होता है। आप पढ़ो भी नहीं तो भी फॉरवर्ड तो कर ही दो। अब कम-से-कम फॉरवर्ड की संख्या तो कम कर दी है, पहले तो असंख्य फॉरवर्ड होते थे। मुझे लगता है कि ये जो चीज़ें हैं जो भी कोई कुछ कह रहा है उसके ऊपर आपको सोचने की ज़रूरत है।

चित्र : प्रशांत सोनी

हम लोग होशंगाबाद में इस बात पर बहुत लोगों से बहस करते थे। उनके मन में यह सवाल डालने का प्रयास करते थे कि क्या पीपल के पेड़ के नीचे भूत रहते हैं, या फिर पेड़-पौधे रात को सिर्फ़ कार्बन डाईआक्साइड छोड़ते हैं, और जो हमें डराता है वह भूत नहीं भौतिक चीज़ें ही हैं। फिर यह सवाल कि क्या पेड़-पौधे दिन में सिर्फ़ ऑक्सीजन छोड़ते हैं? वैज्ञानिक तौर पर हम यह जानते हैं कि श्वसन निरन्तर प्रक्रिया है, अतः पौधे दिन में कार्बन डाईआक्साइड छोड़ेंगे भी। अब हर चीज़ की जाँच करने के तरीक़े हम सोच सकते हैं, लेकिन उसके लिए ऐसी प्रवृत्ति चाहिए जो हमें सवाल पूछने और ये मानने को तैयार करे कि दिए गए कथनों पर, तथ्यों पर सवाल करना चाहिए। साथ ही
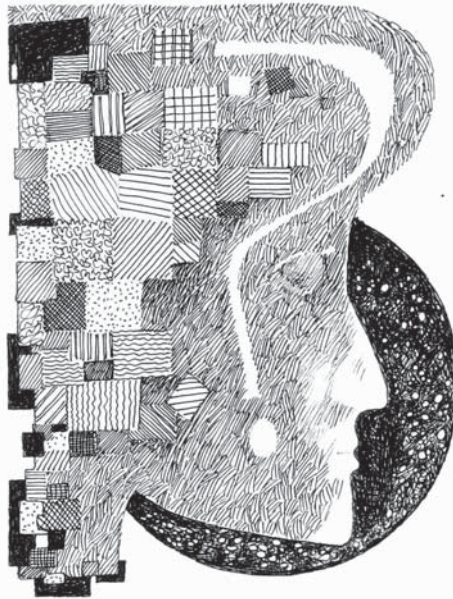
उन सवालों पर विचार करना चाहिए और फिर ये हिम्मत हो कि जाँचने के तरीक़े सोचें और जाँचने के लिए काम करें। और ये हममें से हर कोई कर सकता है।

मुझे सिर्फ़ ये कहना है कि (जो यहाँ पर बैठे हैं) हाई स्कूल के छात्रों के दिमाग़ में भी बहुत सारे सवाल होंगे और होते ही हैं, उनको दबाइए मत। ये मत समझिए कि चूँकि उनका जवाब हमारी पीढ़ी के पास नहीं था इसलिए वो सवाल महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। वो सभी सवाल बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। उनको आपको लगातार पूछना है और ये सोचना है कि उनके जवाब आप कैसे ढूँढ़ेंगे। तभी आप एक बेहतर भारत, एक बेहतर भविष्य की तरफ़ बढ़ सकते हैं। आपको नए सवाल और नए जवाब ढूँढ़ने होंगे। जो यहाँ बैठे हैं उनसे, ख़ासकर आप सब युवा विद्यार्थियों से, युवा शिक्षकों से, गौहर ने बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात कही है। उन्होंने कहा कि ये जाँच-परख करने की, और आगे किधर जाना है इसकी ज़िम्मेदारी आप, हमपर नहीं छोड़ सकते। आगे का रास्ता आपको तय करना है। उसमें विज्ञान, सोच का तरीक़ा, विनम्र बनना, साहसी बनना, नया रास्ता खोजना, वो रास्ता जो प्रामाणिक हो, जिसको आप तर्क के साथ मान सकें, और उसके बाद में ये विनम्रता भी कि अगर ये ठीक नहीं है तो झुक कर नई बात को सुनना, स्वीकार करना, मुझे लगता है ये चीज़ें बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

हृदय कान्त दीवान वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय, बेंगलुरू में प्रोफ़ेसर हैं और शुरुआती दिनों से ही फ़ाउण्डेशन से निकटता से जुड़े हुए हैं। आप पिछले पच्चीस वर्षों से शिक्षकों के पेशेवर विकास और व्यवस्थागत परिवर्तन के लिए काम कर रहे हैं।
सम्पर्क : hardy@azimpremjifoundation.org

पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में थीम-आधारित शिक्षण

पारुल बत्रा दुग्गल

यह लेख पूर्व प्राथमिक कक्षाओं यानी नर्सरी, केजी-1 और केजी-2 की बुनियादी कक्षाओं में बच्चों को सिखाने-पढ़ाने की तैयारी का मक़सद क्या है और उन्हें क्या व कैसे सिखाना-पढ़ाना चाहिए आदि के बारे में हैं।

लेख में पूर्व प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के साथ काम करने की एक विस्तृत रूपरेखा प्रस्तुत की गई है, साथ ही लेखिका द्वारा इस रूपरेखा के अनुरूप बच्चों के साथ किए कार्य के विश्लेषणपरक अनुभव भी प्रस्तुत किए गए हैं। सं.

देश में चल रहे प्राइवेट स्कूलों में, आमतौर पर पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं (नर्सरी, केजी-1 व केजी-2) में बच्चों को अल्फ़ाबेट्स व फोनिक साउण्ड सिखाना शुरू कर दिया जाता है। इसके साथ ही उन्हें सीधे गिनती व अक्षर लिखना सिखाना भी शुरू कर दिया जाता है। इसमें उन्हें अक्षरों और अंकों की डॉटेड आकृतियों पर पेंसिल फेरनी होती है और कक्षा बढ़ने के साथ उन्हें स्वयं लिखने का प्रयास करना होता है। केजी-2 तक आते-आते उन्हें विभिन्न शब्द या तुकान्तवाले शब्द लिखना व पढ़ना तक सिखाया जाने लगता है। साथ ही, एक से पचास तक गिनती व हिन्दी और अँग्रेज़ी की पूरी वर्णमाला आने की अपेक्षा भी बच्चों से रहती है। उन्हें रंगों, आकारों के नाम, फूलों, पक्षियों, जानवरों, शरीर के भागों आदि के नाम ज़बरदस्ती याद कराए जाने लगते हैं। इस तरह का पाठ्यक्रम बच्चों की आयु के अनुरूप नहीं होता और इससे उनके मानसिक विकास पर विपरीत असर पड़ता है। किसी चीज़ के बारे में केवल सूचना हासिल कर लेना सीखना नहीं होता, बल्कि सीखने का अर्थ कुछ सायास अनुभवों से गुज़रकर अवधारणाओं का बनना होता है। किन्तु जो सिखाया जाता है उसमें अनुभवों का पुट नहीं होता। उन्हें जो सिखाने का प्रयास किया जाता है उसमें गिनती या वर्णमाला जैसी कई अवधारणाएँ 'अमूर्त' होती हैं। इन्हें बिना किसी सन्दर्भ के सिखाया जाता है। पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों को क्या सिखाया जाना चाहिए, इसे समझने के लिए बाल विकास के चरणों की कुछ समझ चाहिए, जिससे सीखना प्राकृतिक बने। आइए, एक-दो उदाहरणों से इसे समझते हैं :

1. आगे के पृष्ठ पर चित्र 1 में दिया गया दाईं तरफ़ का एक्स-रे, सात साल और बाईं तरफ़ का एक्स रे, पाँच साल के बच्चे के हाथों को साथ-साथ दिखाता है। हम देख सकते हैं कि पाँच साल के बच्चे के हाथ में हड्डी की जगह कार्टिलेज (उपास्थि) की मात्रा ज़्यादा है, जो धीरे-धीरे हड्डी में परिवर्तित होगी। हाथ की हड्डियों का पूरी तरह विकास किशोरावस्था तक जारी रहता है, इसे मेडिकल भाषा में 'ऑसीफ़िकेशन' कहते हैं।

यानी, बच्चों के हाथों की हड्डियों व माँसपेशियों की सूक्ष्म ग्रिप पाँच साल में पेंसिल को पकड़ने के लिए तैयार हो रही होती है,

चित्र 1

व हिलने-डुलने के लिए दण्ड देना अप्राकृतिक है।

छोटे बच्चों, ख़ासतौर से 3 से 6 वर्ष आयु वालों, का पाठ्यक्रम उन्हें पढ़ना-लिखना न सिखाकर 'स्कूल जाने के लिए तैयार' करे। स्कूल जाने की इस 'तैयारी' (स्कूल रेडीनेस) में उनके साथ संख्या-पूर्व अवधारणाओं और आरम्भिक साक्षरता के अभ्यास हेतु गतिविधियाँ की जाएँ। यानी, कुछ याद करवाने (मसलन, शरीर के अंगों या परिवार के सदस्यों के नाम) की जगह गतिविधियों के माध्यम से उन्हें कुछ सेंसरी (संवेदी) और मोटर (पेशीय) अनुभवों से गुज़ारना ज़रूरी है। ज़ाहिर-सी बात है कि ये गतिविधियाँ तितर-बितर तरीक़े से नहीं कराई जा सकतीं। इनके लिए कोई 'ख़ाका' (फ्रेम) होना ज़रूरी है। पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में थीम-आधारित शिक्षण यह ख़ाका उपलब्ध करा सकता है।

इसलिए बच्चों के सही तरीक़े से न लिख पाने पर नाराज़ होना उचित नहीं है। आमतौर पर, नर्सरी व केजी कक्षाओं में बच्चे कॉपियों पर सुन्दर राइटिंग में लिखें, अक्षर ठीक से बनाएँ, इसपर ही ज़ोर होता है। लम्बे समय तक पेंसिल पकड़ने से उनकी सूक्ष्म माँसपेशियों के विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ता है।

थीम किसी विषय से जुड़े ज्ञान को एक 'इकाई' के रूप में बाँधने का प्रयास करती है। अपने बारे में, पेड़-पौधों, जानवर और पक्षी, फल,

2. इसके अलावा, पूर्व-प्राथमिक शालाओं में बच्चों को लम्बे समय तक एक ही जगह पर बेंच या कुर्सी पर बिठाकर रखा जाता है। इस वक़्त उनके शरीर की स्थूल माँसपेशियाँ भी तैयार हो रही होती हैं और उन्हें अपने काम में बारीक़ी व विशेष सन्तुलन हासिल करना सीखना होता है। इस कारण लम्बे समय तक बिना हिले-डुले कक्षा में बैठना भी छोटे बच्चों के लिए उचित नहीं होता, यह उनके प्राकृतिक स्वभाव के भी विपरीत है। वे चीज़ों को छूना और महसूस करना चाहते हैं, उनसे प्रयोग करना चाहते हैं, यह सब बैठे-बैठे सम्भव नहीं है। इसलिए छोटे बच्चों को लम्बे समय तक बिठाए रखना

चित्र 2

सब्ज़ी, हवा, पानी, वाहन, आदि जैसे विषयों के इर्द-गिर्द इन्हें व्यवस्थित किया जा सकता है। पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में थीम के विषय बच्चों के परिचित परिवेश से ही जुड़े होने चाहिए और उन्हें आयु अनुरूप कला, खेल, भाषाई व संज्ञानात्मक गतिविधियाँ करवाई जानी चाहिए। पूर्व-प्राथमिक शिक्षा में हम पाठ्यक्रम को आयु अनुरूप तीन स्तरों में बाँटकर देख सकते हैं– तीन से चार वर्ष, चार से पाँच व पाँच से छह वर्ष के लिए। किस आयु वर्ग के लिए कौन-सी गतिविधियाँ करवाना उपयुक्त होगा, इसके लिए हाल ही में आए *एनसीएफ फॉर फाउंडेशनल स्टेज 2022* ने कुछ पाठ्यचर्या सम्बन्धी लक्ष्य निर्धारित किए हैं। जिसमें बाल विकास के लक्ष्य भी निर्धारित किए गए हैं। साथ ही इन लक्ष्यों से जुड़ी कुछ क्षमताएँ हैं, जिनके अनुसार आयुवार गतिविधियों की अनुशंसा की गई है।

यह ज़रूरी है कि प्रतिवर्ष पढ़ाने के लिए कुछ थीमों का चयन किया जाए और हर माह किन्हीं एक-दो थीम पर काम हो। हर थीम की विषयवस्तु को नियोजित किया जाए, जिससे बाल विकास के सभी आयाम या विकास क्षेत्रों (यथा– शारीरिक एवं गत्यात्मक विकास, संज्ञानात्मक विकास, भाषाई विकास, सामाजिक एवं भावनात्मक विकास और सृजनात्मक (रचनात्मक) एवं सौन्दर्यबोध के विकास हेतु गतिविधियों के अवसर हों।

प्रत्येक थीम की शुरुआत में यह स्पष्ट कर लेना चाहिए कि उस थीम से क्या-क्या अपेक्षाएँ हैं, यानी उस थीम के तहत किन मुख्य बिन्दुओं

चित्र 3

पर बात हो रही होगी। इसे 'थीम वेब' भी कहा जा सकता है। थीम वेब का एक उदाहरण ऊपर चित्र 3 में देखें।

थीम वेब का यह डिज़ाइन अलग ढंग से भी बन सकता है। यह सोचना होगा कि थीम वेब में समेटी गई सामग्री के साथ कितने दिन या अवधि में, और कितनी गहराई से बच्चों की अन्त:क्रिया तय की जाएगी। हर थीम की सम्भावनाओं का बहुत विस्तार हो सकता है, लेकिन बच्चों की रुचि बनाए रखने के लिए हमारे अनुसार एक थीम पर बीस से पच्चीस दिन तक कार्य किया जा सकता है। इस तरह साल भर में दस से पन्द्रह थीमों पर कार्य किया जा सकेगा। एक थीम पर काम करने की कक्षा प्रक्रिया का एक उदाहरण देखें :

मान लीजिए, आप 'जानवर' थीम पर काम करना चाहते हैं। इसके तहत, सबसे पहले जिन बिन्दुओं पर बात करनी है उनका एक कच्चा ख़ाका बना लेते हैं। इसे 'थीम वेब' का नाम दे सकते हैं। किसी शुरुआती कक्षा में आमतौर पर तीन से चार, चार से पाँच और पाँच से छह वर्ष, इन तीनों आयु समूहों के बच्चे हो सकते हैं।

आँगनवाड़ी में आमतौर पर सभी बच्चे एक साथ ही बैठते हैं। सभी बच्चों को थीम की गतिविधियों से कैसे जोड़े रखेंगे और आयु स्तर अनुसार किस तरह गतिविधियों में फ़र्क़ लाएँगे, इसका भी एक ख़ाका होना चाहिए। बीस दिन की थीम के लिए हर एक या दो दिन की शिक्षण प्रक्रिया में क्या-क्या हो रहा होगा, इसे विस्तार से लिख लेना भी मददगार होगा।

उदाहरण के लिए, नीचे दी गई तालिका को देखें। इसमें दस दिनों की समय सारणी दी गई है। जिसमें बाएँ से दाएँ थीम की अवधारणाओं पर बातचीत, संज्ञानात्मक कौशल, कहानी व गीत संगीत, आरम्भिक साक्षरता, कला गतिविधियाँ और मैदानी खेल कराने का ख़ाका दिया गया है।

दिनों का विवरण	थीम की अवधारणाओं पर बातचीत	संज्ञानात्मक कौशल	कहानी, रोल प्ले, गीत, संगीत	संवाद और आरंभिक साक्षरता का विकास	कला गतिविधियाँ	मैदानी खेल
पहला और दूसरा दिन	हमारे आस-पास दिखने वाले और जंगल के जानवरों के बारे में चर्चा	मिलान करना (चित्र)	कहानी- लोमड़ी और कौआ कविता - मैं तो सो रही थी	चित्र देखकर नाम बताओ	जानवर के चित्र में रंग भरना	जानवरों की चाल चलना
तीसरा और चौथा दिन	पालतू और जंगली जानवरों के नाम और भोजन पर चर्चा	पैटर्न बनाना	कहानी और कविता पर अभिनय	कहानी पर चर्चा और क्रम पहचान	जानवरों के चित्र बनाना	जानवरों की नकल
पाँचवाँ और छठा दिन	विभिन्न जानवरों की आवाज़ों पर चर्चा करना	वर्गीकरण	कहानी और कविता पर चर्चा	मौखिक पैटर्न पहचान	जानवरों के चेहरे बनाना	जानवरों की आवाजें निकालना
सातवाँ और आठवाँ दिन	जानवरों के शरीर के हिस्सों पर चर्चा- पैर, सिर, पूँछ, कान, सींग, पंजे, आदि	सही क्रम की पहचान	समूह गान और नृत्य	ध्वन्यात्मक शब्द पहचान	जानवरों के सींग बनाना	मन से कोई भी खेल खेलना
नौवाँ और दसवाँ दिन	जानवरों की विशेषताओं पर चर्चा करना	मिलान करना (रंग व अंगों के आधार पर)	मन से कहानी/कविता सुनाना	बेमेल शब्द या चित्र छाँटना	हथेली से चित्र	आड़ी-तिरछी रेखाएँ बनाना

ऊपर दी गई तालिका में दिखाई गई गतिविधियों के अनुसार, यह ध्यान रखना होगा कि बच्चों को बाल विकास के क्षेत्र में काम करने का मौक़ा मिल सके। बच्चों की दिनचर्या की योजना इस तालिका अनुसार बनाई जा सकती है और गतिविधियों के बीच उन्हें खेलने या पर्याप्त आराम करने और ब्रेक लेने के अवसर दिए जा सकते हैं।

इन सभी आयु समूहों के बच्चों के साथ काम में मैंने महसूस किया कि तीन-चार साल के बच्चे एक साथ दस मिनट से ज़्यादा कोई कार्य नहीं कर पाते। उनके लिए चर्चा, कविता-कहानी और छोटी खेल गतिविधियाँ उपयुक्त हैं।

'जानवर' थीम पर एक आँगनवाड़ी में काम के अपने कुछ अनुभव मैं साझा कर रही हूँ...

पहला और दूसरा दिन

जब मैं आँगनवाड़ी पहुँची तो कार्यकर्ता बच्चों की लम्बाई और वज़न माप रही थीं। आपसी परिचय के दौर के बाद बच्चों को दो समूहों में बैठाया— 3 से 4 वर्ष के बच्चे एक तरफ़ और 5 से 6 तक के दूसरी तरफ़। कुछ बड़े बच्चे अपने भाई-बहनों को सँभालने के लिए और दो रोने वाली लड़कियों की दादी और मम्मी भी कक्षा में साथ बैठी थीं। एक-दो बच्चे रो रहे थे क्योंकि उन्हें सिर्फ़ खिलौनों से खेलना था। ख़ैर, किसी तरह हमारी कक्षा तैयार हुई!

चर्चा : बात शुरू हुई कि उन्हें घर में, घर के आसपास या बस्ती में कौन-कौन से जानवर दिखते हैं। सबसे पहले शेर और फिर हाथी का नाम आया। मैंने पूछा कि शेर कॉलोनी में दिखता है क्या? कुछ जवाब ही 'नहीं' में आए। फिर कुत्ता, बिल्ली, बकरी आदि के नाम आए। जल्द ही गधा, घोड़ा और गाय जैसे नाम आए। एक-दो बच्चों ने ऊँट का नाम भी लिया लेकिन कई बच्चे ऊँट नहीं जानते थे। ज़ैद ने कहा कि उसने हाथी का बच्चा घर में पाल रखा है। कई बच्चों ने बताया कि उनके घर में काँच के बर्तन में मछलियाँ भी हैं। इसी तरह तोता या मुर्ग़ियाँ और बकरियाँ भी कुछ घरों में पलती हैं। इस बात पर चर्चा हुई कि घर के आसपास शेर या भेड़िया जैसे जानवर क्यों नहीं दिखते, वे कहाँ रहते होंगे? आगे चार्ट के द्वारा पालतू और

जंगली जानवरों के नामों पर चर्चा हुई। चर्चा के अन्त तक बच्चे कुछ सतही समझ बना पाए कि जंगली जानवर जंगल में और पालतू हमारे आसपास रहते हैं। मैंने सोचा कि इस बातचीत को दोहराते रहना होगा।

चित्र 4

मिलान करना : इस अभ्यास के लिए जानवरों के चित्र कार्डों की कई प्रतियाँ चाहिए थीं। पहले चित्र कार्ड दिखाकर बच्चों से एक-एक जानवर का हिन्दी और अँग्रेज़ी दोनों भाषाओं में नाम पूछा। इसके बाद की गतिविधि में, जानवर के आधे हिस्से के चित्र को उसके बाक़ी आधे हिस्से के चित्र से मिलाना था। इसके लिए जानवर के चित्र के प्रिंट आउट को दो हिस्सों में काट दिया गया और इन्हें आपस में मिक्स कर बच्चों को हिस्से मिलाने के लिए दे दिए। अर्थात, शेर के दोनों हिस्से मिलाना आदि। कुछ बच्चे स्वयं कर पा रहे थे तो कुछ ने अपने आजू-बाजू वाले साथी को देखकर किया। इसके बाद किस जानवर के कार्ड को मिलाया है उसपर बात हुई।

चित्र 5

चित्र देखकर नाम बताओ : यह गतिविधि 3 से 4 वर्ष आयु समूह के साथ अलग और बाक़ी बच्चों के साथ अलग की गई। 3 से 4 वर्ष की उम्र के बच्चों को चित्र देखकर जानवर का नाम बताना था और बड़े बच्चों को नाम के साथ एक वाक्य उस जानवर के बारे में बोलना था। कई बच्चे जानवरों की आवाज़ निकालने में झिझक रहे थे। जानवर के बारे में एक वाक्य का अर्थ समझने में उनको थोड़ा समय लगा। बड़े बच्चों ने बहुत वाक्य बताए, जैसे– 'कुत्ता झूमकर काट लेता है', 'कुत्ता माँस भी खाता है और दूध-रोटी भी', आदि। भेड़ ज़्यादातर बच्चों के अनुभव में नहीं थी, अतः कम बच्चे ही कुछ बता पाए। इसी प्रकार, गधा भी कम बच्चे जानते थे इसलिए उसके बारे में कुछ बड़े बच्चे ही बता पाए।

मन से चित्र : ज़्यादातर बच्चों ने कहा, "हमें चित्र बनाना नहीं आता या फिर क्या हम घर पर बना सकते हैं।" थीम-आधारित चित्र बनाने का भी पहला अनुभव था। बहुत-से बच्चों ने अल्फ़ाबेट्स या कुछ और चीज़ें बनाईं, कुछ ने पेज ख़ाली छोड़े, कुछ ने पक्षी बनाए, लेकिन जानवर कम ही बच्चों ने बनाए। एक-एक बच्चे से बातचीत हुई कि क्या बनाया है और चित्र के साथ क्या बनाया है, और उनका नाम व उम्र लिखी।

कहानी–कविता : 'मैं तो सो रही थी' कविता मज़े के साथ गाई। 'लोमड़ी और कौवा' कहानी में अधिक रुचि नहीं बनी। इसमें छोटे बच्चे ध्यान नहीं दे रहे थे। इसका कारण कहानी सुनने का अभ्यास न होना भी हो सकता है।

मेरी चाल कैसी : इस गतिविधि में बच्चों को बाहर खुले मैदान में अलग-अलग जानवरों जैसे चलने का अभिनय करना था। बच्चों ने काफ़ी मज़ा लिया। बड़े बच्चे जल्दी समझे और आसानी से कर पाए। 3-4 वर्ष वाले बच्चे आँगनवाड़ी कार्यकर्ता को देखकर अभिनय कर रहे थे और जिन जानवरों का अभिनय कार्यकर्ता ने किया, उन्होंने उनकी ही नक़ल की।

तीसरा और चौथा दिन

चर्चा : कौन, क्या खाता है, यह समझने में बच्चों को समय लगा। मसलन, शाकाहारी और माँसाहारी, यानी कुछ जानवर सिर्फ़ माँस खाते हैं, कुछ सिर्फ़ घास, और कुछ सबकुछ, यह समझना। जंगली जानवरों के बारे में अनुभव न होने पर वे सुनी-सुनाई बातें बोल रहे थे, जैसे– भालू और शेर इंसान को खा जाते हैं आदि।

पैटर्न पहचानना : बच्चों को तीन जानवरों की खाल के पैटर्न वाले कार्ड बाँटे गए– शेर, ज़ेबरा

चित्र 6

व जिराफ़। पहले उस जानवर के चित्र के साथ उसकी खाल का कार्ड रखकर बताया गया कि यह शेर है और यह उसकी खाल का कार्ड। इसी तरह, ज़ेबरा और जिराफ़ के साथ उनकी खाल का पैटर्न रखकर बातचीत हुई कि ज़ेबरा, जिराफ़ आदि जानवरों की खाल कैसी है। फिर बच्चों को गोल घेरे में कार्ड मिक्स करके बाँटे। उन्हें उस जानवर की खाल वाला कार्ड उठाना था जिसका नाम बताया जाए। तीन-चार बार के बाद छोटे बच्चों को भी समझ आ गया, जबकि पहले वे कोई भी कार्ड उठा रहे थे। बच्चे बीच-बीच में मज़ाक़ भी करने लगे थे। चाहे किसी भी जानवर का नाम लो, वे सारे कार्ड उठा रहे थे। इस प्रक्रिया को कई बार करने के बाद बच्चे इसे समझकर बता पाए।

कहानी पर चर्चा और क्रम पहचान : अलग-अलग बात करने पर काफ़ी बच्चे बता पा रहे थे कि कहानी में क्या हुआ, पर समूह में पूछने पर बिलकुल नहीं।

कला : बच्चों ने अपने मन से किसी भी जानवर का चित्र बनाया।

पाँचवाँ और छठा दिन

जानवरों के शरीर के हिस्सों पर चर्चा : यह गतिविधि पोस्टर और कार्डों के साथ की गई। मैंने हाथों से अपने सिर पर सींग और बाँह से पूँछ लगाने का अभिनय भी किया। फिर बच्चों ने भी कान, पूँछ, सींग लगाने का अभिनय किया। यह बातचीत हुई कि किन जानवरों के सींग होते हैं और किनके नहीं। इस आधार पर मोटा वर्गीकरण भी किया, जैसे बिना सींग वाले जानवर– कुत्ता, बिल्ली, गधा, सींग वाले जानवर– गाय, भैंस और बकरी आदि।

समूह गान और नृत्य : स्पीकर से बहुत-सी कविताएँ और गाने, जैसे– 'आलू कचालू बेटा', 'नानी तेरी मोरनी को मोर ले गए', 'बाला बाला' आदि, सुनाए गए। इनपर बच्चों ने मज़े से डांस किया।

ध्वन्यात्मक शब्द पहचान : म्याऊँ-म्याऊँ, भों-भों, काँव-काँव, आदि जैसे कविता में आए ध्वन्यात्मक शब्दों को दोहराया गया। 5-6 वर्ष की आयु वाले समूह के साथ ऐसे शब्द भी बनाए जो कविता का हिस्सा नहीं थे, मसलन, खों-खों, खुर-खुर, मू-मू, आदि।

जानवरों के सींग बनाना : 3-4 वर्ष वाले छोटे बच्चों से सींग वाले जानवरों के कार्ड के ऊपर टहनियों के छोटे टुकड़ों के सींग लगवाए और 4-6 वर्ष के बच्चों ने अपने मन से सींग
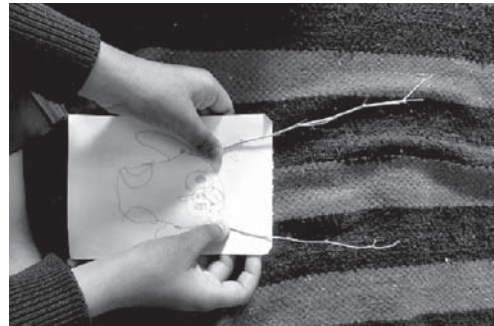
चित्र 7

वाले जानवरों के चित्र बनाए। चित्र बनाने में मदद करने और ब्लैकबोर्ड पर सरल आकृति से चेहरा बनाकर दिखाने के बावजूद बड़े बच्चों में से कुछ ही जानवरों के चेहरे बना पा रहे थे। शायद ऐसे कई अभ्यास कई बार करने होंगे!

इस अन्त:क्रिया के छह दिनों में समझ आया कि शहरी झुग्गी-बस्तियों में बाड़े या आँगन की अवधारणा नहीं होती, उसे गाँव के बच्चे अच्छे-से समझ पाते हैं। इसलिए ग्रामीण और शहरी सन्दर्भ को ध्यान में रखकर बात करना उपयुक्त होगा। सब जंगली जानवर जंगल में रहते हैं यह तो बच्चों को समझ आ गया, लेकिन पालतू जानवर अलग-अलग तरह से रह सकते हैं, कोई आँगन में, कोई घर के अन्दर, कोई पिंजरे में, तो कोई एक्वेरियम में। जिन बच्चों को पालतू जानवरों का कोई अनुभव नहीं था उनके लिए इस चर्चा की कई बातें नई थीं।

सातवाँ और आठवाँ दिन

चर्चा : सवाल था– कौन-से जानवर पानी में रहते हैं?

पानी में रहने वाले जानवरों के बारे में बच्चों ने ख़ुद ही मछली, मेंढक, मगरमच्छ, आदि नाम बताए।

वर्गीकरण : इसके बाद कार्ड के साथ ज़मीन पर और पानी में रहने वाले जानवरों पर चर्चा हुई। चार-चार बच्चों के समूह बनाकर हर समूह को मिक्स कार्ड दिए गए। उन्हें पानी में और ज़मीन पर रहने वाले जानवरों

चित्र 8

के कार्ड को छाँटना था। हर बच्चे को उसकी बारी मिली।

कहानी : बच्चे कहानी सुनने के कुछ अभ्यस्त हो चुके थे और इस छोटी कहानी को अपने शब्दों में भी सुना पा रहे थे।

अन्त्याक्षरी : आज, 3-4 वर्ष के आयु समूह को छोड़कर, वैष्णवी और लव की दो टीमें बनाई गईं। ब्लैकबोर्ड पर टीमों के नाम लिखे गए। लव गतिविधियों में हिस्सा ले, इसलिए उसके नाम से टीम बनी। बच्चों को शुरू में टीम का मतलब समझ नहीं आया। वे काफ़ी देर तक 'मैं बताऊँगा', 'मैं बताऊँगा' ही करते रहे। बच्चों के पास जब नाम ख़त्म हो गए तब वे चार्टों में से जानवरों के नाम देखकर बताने लगे। इस गतिविधि में हर बच्चे ने प्रतिभाग किया, लेकिन कुछ बच्चों को काफ़ी प्राम्प्ट करना पड़ा।

अख़बार से कोलाज बनवाना : हाथी की आउटलाइन पर पेपर कोलाज बनवाने का कार्य करवाया। यह कार्य 4-4 बच्चों के समूह में
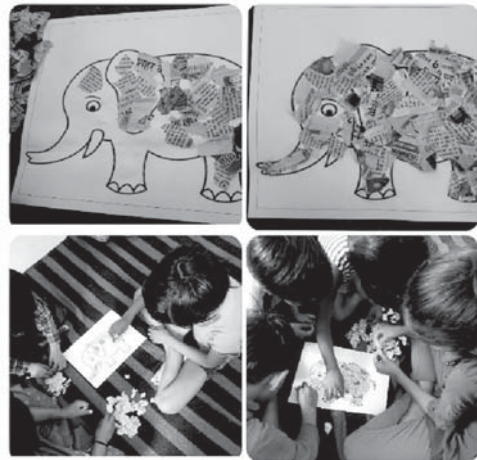
चित्र 9

करवाया गया। आज 3-4 वर्ष वाले बच्चे भी शामिल होना चाहते थे, अतः हर समूह में एक बड़ा और तीन छोटे बच्चे थे। पेपर पर ग्लू लगाकर दिया और पेपर चिन्दी करके दिए। बच्चों को इन्हें चिपकाना था, जो वे समूह में अच्छे-से कर पाए।

नौवाँ और दसवाँ दिन

कौन, क्या खाता है : शाकाहारी और माँसाहारी की जगह माँस खाने वाले और घास खाने वाले शब्दों का प्रयोग किया गया। लेकिन शुरू में बच्चे घास खाने वाले जानवरों को नहीं समझे क्योंकि वे ये जानते थे कि ख़रगोश गाजर, भालू शहद और बन्दर केला खाते हैं। यह समझने में समय लगा कि भालू सर्वभक्षी होता है, और वह फल-फूल, सब्ज़ियाँ, मछलियाँ, शहद, आदि सब खाता है। इसी तरह बन्दर और सूअर भी सबकुछ खाते हैं। इसपर भी बात हुई कि क्या कुत्ता और बिल्ली दूध-रोटी ही खाते हैं या कुछ और भी।

याद रखना : बच्चों को चार जानवरों के कार्ड दिखाकर हरेक का नाम पूछा। फिर बच्चे की आँख बन्द करवाने के बाद एक कार्ड उठा लिया गया। आँख खोलने के बाद बच्चे को बताना था कि किस जानवर का कार्ड गायब है? यह कार्य सभी बड़े बच्चे कर पाए।

'ऊँट चला' कविता, गाना और कहानी पर चर्चा : इसे सभी बच्चे आराम से गा पाए और दो-तीन बार में यह याद हो गई। शेर की दावत के सन्दर्भ में पूछा गया कि हाथी के अलावा कौन-कौन नाराज़ हुआ होगा, और उन्हें कैसे मनाया गया होगा? ज़्यादा प्रतिक्रियाएँ नहीं आईं तो पूछा कि कुत्ता (या ऐसे ही कोई अन्य जानवर) नाराज़ होगा तो क्या खिलाएँगे? बच्चे हर जानवर के लिए 'केला खिलाकर मनाएँगे' ही कह रहे थे। ऐसा शायद इसलिए क्योंकि कहानी में हाथी को केला खिलाकर मनाने का ज़िक्र है। कुत्ता भी केला खाएगा क्या, हिरण और चीता भी केला खाएँगे क्या, यह पूछने पर कुछ बड़े बच्चों ने कहा कि कुत्ते को दूध-रोटी खिला सकते हैं। हालाँकि, काफ़ी बच्चे सिर्फ़ फलों के नाम पर ही अटके रहे। वे शायद यही सोच रहे थे कि सिर्फ़ फल खिलाकर ही मनाना है। आगे बात हुई तो हिरण को घास और चीते को माँस खिलाने जैसे उदाहरण भी आए।

शेर की दावत पर अभिनय : कहानी अब अच्छे से याद थी, अतः पात्रों पर चर्चा की गई। शेर, हाथी और बन्दर का अभिनय करने के लिए तीन बच्चे आमंत्रित किए गए, बाक़ी दावत के मेहमान बनेंगे। स्क्रिप्ट छोटी बनाई गई। शेर को कहना था, "मेरे घर सबको दावत पर आना है।" इसके बाद कक्षा दावत में खाना खाने का अभिनय करेगी। तभी हाथी बना बच्चा रोते हुए आएगा और कहेगा, "शेर, तुमने मुझे पार्टी में क्यों नहीं बुलाया।" फिर बन्दरिया बनी बच्ची कहेगी, "मेरे पास एक उपाय है। हाथी को केला खिलाओ।" वह प्लास्टिक का केला शेर को देगी और शेर उसे हाथी को देगा। फिर केला खाकर हाथी दावत में शामिल हो जाएगा। कहानी के अभिनय में तीन बच्चों को सबके सामने आना था और अपने संवाद बोलने थे। अगर कहानी याद हो, और बच्चों से उसपर बात की गई हो तो छोटे बच्चे भी कहानी पर आराम से अभिनय कर पाते हैं।

हथेली से चित्र बनाना : हथेली से चित्र बनाने में केवल बड़े बच्चे ही उसे जानवर का रूप दे सके, छोटे बच्चों के लिए छापे लगाना पर्याप्त था।

चित्र 10

किसकी चाल कैसी : इसमें बच्चों को मेंढक की तरह कूदने, हाथी की तरह झूमकर चलने, और बकरी की तरह इधर-उधर दौड़ने को कहा गया।

तक़रीबन एक माह तक प्रतिदिन लगभग कुछ इसी तरह जानवर थीम वेब के अन्तर्गत

चुने सभी बिन्दुओं पर काम हुआ। यह ध्यान रखा गया कि अन्य थीमों से किन संज्ञानात्मक कौशलों का विकास किया जा रहा है। सभी थीमों के अन्तर्गत सभी कौशलों की साल भर की सूची बनाई जा सकती है। इस तरह, पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं के लिए साल भर का पाठ्यक्रम बनाया जा सकता है। एक थीम की समाप्ति के बाद एक-एक बच्चे से व्यक्तिगत तौर पर थीम से जुड़े कुछ बिन्दुओं को लेकर बातचीत करके समझा जा सकता है कि बच्चा थीम को कितना समझ पाया। क्या बच्चा थीम से जुड़ी कोई कविता-कहानी, मसलन, 'मैं तो सो रही थी', 'लोमड़ी और कौवा', 'शेर की दावत', अपने शब्दों में सुना पाता है? क्या वह थीम में आई मुख्य अवधारणाओं, जैसे– पालतू-जंगली, पानी में रहने वाले जानवरों, आदि के नाम बता पाता है? आदि। यहाँ उद्देश्य बच्चे को सायास कुछ याद करवाने का नहीं है। उद्देश्य यह देखना है कि अगर उसने रुचिपूर्वक सहभागिता की है तो वह उस थीम में बारे में अपने मन में एक छवि बना पाया होगा।

चुनौतियाँ

- तीन से चार वर्ष के बच्चों का घर से बाहर रहने का यह पहला अनुभव होता है, इसलिए वे तनाव में होते हैं। वे कक्षा के माहौल के अभ्यस्त नहीं होते और रोते हैं। कई बच्चों को परिवार का कोई बड़ा सदस्य साथ चाहिए होता है।

- बच्चे स्वाभाविक तौर पर दौड़ना और खेलना ही चाहते हैं, इसलिए एक ही काम को पन्द्रह से बीस मिनट तक करते रहने के अभ्यस्त होने में उन्हें लगभग एक माह का समय लगा। इसे शाला जाने की पूर्व-तैयारी के रूप में देखा जा सकता है।

- विभिन्न आयु समूहों के बच्चों के साथ एक ही कक्षा में एक ही समय पर काम करना मुश्किल होता है, क्योंकि सभी बच्चे उम्र और व्यवहार के तौर पर बिलकुल अलग होते हैं।

- बच्चे नियमित रूप से आँगनवाड़ी नहीं आते, इसलिए हर दिन की शुरुआत पिछली चर्चाओं को दोहराकर करनी पड़ती थी।

- ज़्यादातर बच्चों ने प्राइवेट स्कूलों में दाख़िला ले रखा था, इसलिए वे कुछ समय आँगनवाड़ी आकर फिर स्कूल चले जाते थे। इसे लेकर आँगनवाड़ी कार्यकर्ता के मन में भी चिन्ता थी, क्योंकि आँगनवाड़ी में बच्चों की संख्या लगातार घट रही थी और उनके साथ काम करने के घण्टे भी कम हो गए थे।

नई शिक्षा नीति 2020 में प्राथमिक संरचना के ढाँचे में बदलाव किया गया है। इसमें पहले तीन वर्ष (3-6 आयु) पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं और बाद के दो वर्ष (6-8) कक्षा 1 व 2 के लिए हैं। प्राइवेट स्कूलों में तो नर्सरी, केजी-1 और केजी-2 की कक्षाएँ अलग-अलग लगती हैं,
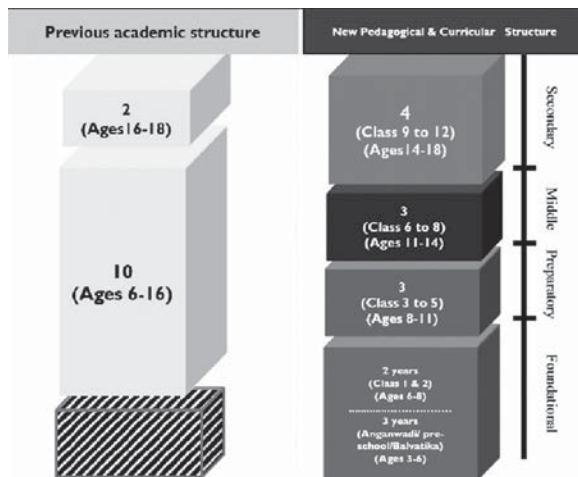
चित्र 11

लेकिन आँगनवाड़ी या सरकारी पूर्व-प्राथमिक शालाओं में अभी एक ही शिक्षक की व्यवस्था है। ज़ाहिर है कि अधिकांश पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं में तीन से छह वर्ष की आयु के बच्चे एक साथ बैठ रहे होंगे। उनके साथ इस तरह किसी एक थीम पर ऐसी 'स्तरानुकूल' गतिविधियाँ करवाना उचित रहेगा, जिनमें सभी आयु वर्ग के बच्चों के लिए पर्याप्त मौक़े हों। इस तरह बच्चों के परिचित परिवेश से विषय लेकर बेहद कम सामग्री या स्थानीय स्तर पर चित्र कार्ड, पोस्टर, आदि बनाकर उनका उपयोग किया जा सकता है।

यह लेख अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम करते हुए मध्य प्रदेश सरकार व महिला एवं बाल विकास मंत्रालय के लिए वर्ष 2021-22 में ईसीई (शाला पूर्व शिक्षा - शिक्षण मार्गदर्शिका - थीम-आधारित पाठ्यक्रम) पाठ्यचर्या निर्माण व उसकी पायलट प्रक्रिया के दौरान हुए अनुभवों पर आधारित है।

हाथ के एक्स-रे का चित्र - इंटरनेट से साभार
पायलट प्रक्रिया के सभी चित्र - पारुल

सन्दर्भ

1. *पूर्व-प्राथमिक पाठ्यचर्या*, एनसीईआरटी, नई दिल्ली
2. *प्रारम्भिक बाल्यावस्था देखभाल एवं शिक्षा*, मध्य प्रदेश
3. एनसीएफ फॉर फ़ाउण्डेशनल स्टेज 2022, एनसीईआरटी, नई दिल्ली

पारुल बत्रा दुग्गल पिछले दस वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन भोपाल में काम कर रही हैं, और फ़िलहाल सरकारी स्कूल के शिक्षकों और बच्चों के साथ शुरुआती पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाओं को समझने में जुटी हैं। बच्चों के लिए कई किताबें प्रकाशित। बाल साहित्य और बच्चे कैसे सीखते हैं, में गहरी दिलचस्पी है।
सम्पर्क : parul.duggal@azimpremjifoundation.org

कक्षा संचालन : चुनौतियाँ और चुनाव

मीनू पालीवाल

बच्चों के सीखने का वातावरण भय और दण्ड पर आधारित नहीं होना चाहिए। लेकिन बिना भय और दण्ड के बच्चे शिक्षक की बात को समझ सकें, और कक्षा में सीखने का माहौल निर्मित करने में सहयोग दे सकें ऐसा करने में बहुत सी मुश्किलें आती हैं। लेखिका बताती हैं कि किस तरह धीरज और संयम के साथ शिक्षक को बच्चों की भागीदारी सुनिश्चित करानी चाहिए। लेखिका यह अनुभव भी साझा करती हैं कि रोचक खेलों और अन्य नवाचारों के सहारे कक्षा संचालन को कैसे ज़्यादा बेहतर बनाया जा सकता है। सं.

हमारी संस्था अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में जो भी नए साथी आते हैं, वे प्रायः कक्षा संचालन में परेशानी महसूस करते हैं। शुरुआत में, फ़ेलोशिप के दौरान मेरी सबसे बड़ी चुनौती भी कक्षा संचालन ही थी।

कक्षा सुचारु रूप से चल सके, इसके लिए स्कूलों में डाँटकर, पिटाई करके, बच्चों को शान्त करवाना प्रचलित तरीक़ा है। हम सभी जानते हैं कि ये तरीक़े ठीक नहीं हैं, लेकिन फिर भी बच्चों के साथ काम करते हुए इन तरीक़ों को उपयोग में ले ही लेते हैं। ऐसा क्यों है? मुझे लगता है, शायद इसका एक कारण कक्षा में शिक्षक की परिस्थितियाँ होती है। कई कक्षाओं में, स्कूलों में, बच्चे बहुत ज़्यादा होते हैं और उन बच्चों में स्तर के अनुसार भी फ़र्क़ होता है। पढ़ाते समय, जो बच्चे पाठ से जुड़ रहे होते हैं, वे ख़ुद को मशग़ूल रख पाते हैं, जो नहीं समझ रहे होते हैं, वे कुछ और करने लगते हैं। इससे कक्षा की प्रक्रिया बाधित हो सकती है। कक्षा में ऐसी कई और भी परिस्थितियाँ हो सकती हैं। मसलन, जो बच्चे पढ़ाई जाने वाली विषय-वस्तु को समझ लेते हैं वे शिक्षक से कहते हैं कि आगे पढ़ाइए, जबकि जो बच्चे जुड़ नहीं पाते वे कुछ और करने लगते हैं। कुछ बच्चे कक्षा में उछल-कूद चाहते हैं। फिर शिक्षक को सिलेबस पूरा करने की चिन्ता भी होती है, क्योंकि परीक्षाओं का दबाव होता है। इन सब परिस्थितियों के बीच जब शिक्षक पढ़ाते हैं और कक्षा में बच्चे शोर करते हैं, बात बिलकुल नहीं सुनते, उस वक़्त यह सोच पाना, कि मारने-डाँटने के अलावा इस स्थिति से पार पाने का क्या वैकल्पिक तरीक़ा हो सकता है, आसान काम नहीं है। इसलिए शिक्षक कई बार न चाहते हुए भी ग़ुस्सा कर बैठते हैं।

एक कारण सोच का भी है। कई वयस्कों का अनुभव है कि उनके समय में बच्चों को स्कूलों में मार पड़ती थी। हालाँकि, उनमें से कुछ लोगों का अनुभव यह भी है कि जो शिक्षक सिखाने के लिए मारते थे, वे उन्हें प्यार भी करते थे। इस तरह के भी ख़याल व्यक्त किए जाते हैं कि अच्छा हुआ, उन सर ने हमें मारकर, डाँटकर सिखा दिया वरना मैं आज यहाँ तक नहीं पहुँच पाता। भई, उस समय तो हम बच्चे थे, हमें समझ कम थी। इस तरह के विचार मारने-पीटने को

एक जायज़ रास्ता स्वीकार लेने के लिए समर्थन देते हैं।

बच्चों को पीटकर, डाँटकर शान्त कराना काफ़ी आसान और तुरन्त नतीजा देने वाला रास्ता है। फिर सवाल है कि वैकल्पिक तरीक़े क्यों तलाशें?

हम एक लोकतांत्रिक समाज बनाना चाहते हैं। ऐसा समाज जिसके सदस्य निर्भीक हों, उनमें ख़ुद निर्णय लेने की क्षमता हो, वे सही-ग़लत को तर्कों के आधार पर पता कर सकें। ऐसे सदस्य बन पाएँ, इसके लिए ज़रूरी है कि बच्चों के सीखने का, माने स्कूल का और कक्षा का, वातावरण भय और दण्ड पर आधारित न होकर लोकतांत्रिक हो।

लेकिन लोकतांत्रिक माहौल बन पाए, इसके लिए कक्षा संचालन के वैकल्पिक तरीक़े ढूँढ़ पाना और फिर उन्हें कक्षा में लागू भी कर पाना बहुत आसान नहीं है। फ़ेलोशिप के दौरान, बच्चों के साथ कक्षा में काम करते हुए, मुझे अपने ऊपर काफ़ी नियंत्रण रखना पड़ा जिसमें बहुत सायास प्रयास की ज़रूरत पड़ी। शायद इसलिए, क्योंकि मुझे भी इस समाज में रहते हुए यह अनुभव तो हुए ही कि भय से चीज़ें होती दिखती हैं (और बच्चों को भी यह अहसास कई बार हुआ होगा)।

ख़ैर, कक्षा और स्कूल में काम करते हुए कई बार किसी घटना या किसी बच्चे को नज़रअन्दाज़ किया। कई बार बहुत ग़ुस्सा आया और बच्चों पर ग़ुस्सा भी किया। पहले वर्ष में कभी-कभी डाँटा ज़रूर, पर दूसरे वर्ष में इसकी ज़रूरत कुछ कम ज़रूर हुई पर ख़त्म नहीं। कक्षा में ऐसे ढेरों अनुभव हुए जहाँ मैंने बच्चों से बातचीत में, उनके साथ कक्षा का काम करने में, चुनौती महसूस की। एक वाक़या कुछ ऐसा था :

बच्चे प्रार्थना के बाद कक्षा में पहुँचे थे। मैं प्रधान अध्यापिका से मिलकर कक्षा में पहुँची। बच्चे कक्षा में इधर-उधर दौड़ रहे थे और शोर मचा रहे थे। मैंने दो-तीन बार कहा, अरे बैठ जाओ! अब कक्षा का समय हो गया है। मैंने लगभग चिल्लाते हुए कहा, चुप हो जाओ सब! कक्षा 2 की एक बच्ची पलटी और बोली, तू चुप! जैसे ही उसने ये कहा, कक्षा में सन्नाटा छा गया। मैं भी कुछ समय के लिए स्तब्ध रह गई। मैं उस वक़्त कक्षा से तुरन्त बाहर आ गई। थोड़ी देर बाद मैं फिर कक्षा में वापस आ गई और रोज़ की तरह पढ़ाने का काम शुरू किया।

मैं अब इस घटना को याद करते हुए सोचती हूँ तो बहुत-से सवाल मेरे ज़ेहन में उमड़ते हैं। मसलन, उस बच्ची के बोलने पर सभी बच्चे शान्त क्यों हो गए? क्या उन्हें लगा अब इस बच्ची को मार पड़ेगी या उन्हें भी उस बच्ची का ऐसे बात करना सही नहीं लगा? क्या मैंने सचमुच ही बहुत ख़राब तरीक़े से बच्चों से शान्त हो जाने को कहा था? या, क्या वह बच्ची मुझे अपना दोस्त समझ रही थी, इसलिए उसे लगा कि वह ऐसे बोल सकती है? या फिर, क्या उसके घर पर इस तरह से बातचीत होती है?

लेकिन मुझे यह भी लगता है कि यदि मैं उस वक़्त उस बच्ची को डाँटती या हाथ उठाती, तो वह बच्ची कक्षा से यह सीख लेकर जाती कि 'अपने से कमज़ोर व्यक्ति से ख़राब ढंग से, चिल्लाकर बात की जा सकती है या उसपर हाथ उठाया जा सकता है', जैसा हम दुनिया में देखते भी हैं।

हालाँकि, ऐसे कई अनुभवों पर सोचते वक़्त मुझे महसूस हुआ कि कक्षा में बच्चों को भय से चुप करवा देना (मार-पीट, डाँटना) आसान होता है। मुश्किल होता है नए रास्ते तलाशना। ऐसे रास्ते, जो बच्चों को भी यह अहसास कराएँ कि कक्षा में उनकी भी एक सक्रिय और ज़िम्मेदारी की भूमिका है। नए रास्तों की तलाश के लिए मैंने अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन और कुछ सरकारी स्कूलों के शिक्षक सहकर्मियों से सलाह-मशविरा किया। इण्टरनेट पर इससे

सम्बन्धित वीडियो तलाशे। अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के स्कूलों के अवलोकन से भी मुझे बहुत फ़ायदा हुआ। साथ ही कुछ किताबों (*एक शिक्षक* सिल्विया एस्टन वार्नर, *मेरी ग्रामीण शाला की डायरी* जूलिया वेबर, *मेरी स्कूल डायरी* रेखा चमोली) ने भी मेरी मदद की।

इन्हीं वजहों से यह सम्भव हो सका कि मैं 'तू चुप' बोलने वाली उस बच्ची के साथ और ऐसी अन्य परस्थितियों में काम कर पाई।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

उस दिन तो मैंने उस बच्ची से इस बारे में कोई बात नहीं की। अगले दिन कक्षा शुरू करने से पहले मैंने उस बच्ची को बुलाया। उससे इस बारे में बातचीत की। अपने चिल्लाकर बोलने का कारण उससे साझा करते हुए मैंने कहा, "मुझे इतनी ज़ोर से इसलिए बोलना पड़ा क्योंकि 2-3 बार बोलने के बाद भी किसी ने मेरी आवाज़ नहीं सुनी।" मैंने उससे पूछा, "क्या वह कक्षा संचालन में मेरी मदद करेगी?" उसने 'हाँ' कहा। हम कक्षा में गए। वह ख़ुद ही कहीं से एक लम्बी लकड़ी ले आई और कुछ बच्चों को कहने लगी, "शोर मत मचाओ!" उसने 1-2 बच्चों को मारा भी। मैंने देखा, वह ज़ोर से नहीं मार रही थी। फिर भी कोई शान्त नहीं हो रहा था। मैंने भी कुछ नहीं कहा। थोड़ी देर कोशिश करने के बाद वह बच्ची मेरे पास आई और बोली, "मैडम! कोई सुन नहीं रहा है।" मैंने कहा, "जाओ, थोड़ी और कोशिश करो।" एक बच्चे ने उससे लकड़ी ली और उसे ही मारने लगा। अब मैंने बच्चों से कहा कि वे शान्त हो जाएँ। हमें कक्षा की शुरुआत करनी है। बच्चे व्यवस्थित हो गए। रोज़ की तरह कक्षा ख़त्म हुई। खाने की छुट्टी में मैंने उस बच्ची को बुलाया और पूछा, "क्या हुआ? आज कक्षा में कैसा लगा?" मैंने उससे यह प्रश्न भी किया कि यदि कक्षा इस तरह अव्यवस्थित रहेगी तो हम पढ़ाई कैसे करेंगे? वह बच्ची बोली, "मैडम! कोई सुन ही नहीं रहा था।" मैंने कहा, "कोई बात नहीं, हम थोड़ी और कोशिश करेंगे।"

आपने देखा, बच्ची ने डण्डा लाकर कक्षा संचालन करने की कोशिश की। बच्चों में यह धारणा धीरे-धीरे घर करने लगती है कि मारना या डाँटना सही तरीक़ा है। कुछ बच्चे ही दूसरे बच्चों को मारने या डाँटने की सलाह देते हैं। इसका एक कारण तो यह हो सकता है कि बच्चे समाज में व्याप्त जो व्यवहार देखते हैं, उसी से सीखते हैं। यह हम उनकी दूसरी धारणाओं में भी देख सकते हैं। उदाहरण के लिए, खाना बनाने का काम तो औरतों का ही है।

कक्षा संचालन को बेहतर बनाना सीखते हुए मैंने कुछ और तरीक़े आज़माए, जो कारगर साबित हुए। ये तरीक़े इस प्रकार हैं :

तरीक़ा 1

आप कोई कविता गाएँ जिसमें बच्चों का नाम लेने की जगह हो। मसलन, 'चिट्ठी आई

चिट्ठी आई, दूर देश से चिट्ठी आई, रश्मि के लिए चिट्ठी आई'। जो बच्चा कक्षा में अच्छे-से बैठा है, उसका नाम कविता में लीजिए। इससे बच्चों का ध्यानाकर्षण आपकी तरफ़ होगा और बच्चे आपसे कविता में उनका नाम लेने के लिए कहेंगे। आप सिर्फ़ उन्हीं बच्चों का नाम कविता में लीजिए जो कक्षा में ठीक से बैठे हैं। सारे बच्चे धीरे-धीरे व्यवस्थित होने लगते हैं।

तरीक़ा 2

बच्चों के साथ मिलकर कक्षा के लिए नियम बनाना। जब आप ये काम करना शुरू करेंगे तो आप पाएँगे कि कैसा बर्ताव कक्षा में सही है, यह बच्चे पहले से ही जानते हैं। आपको लगेगा, जब इन बच्चों को पहले से पता है कि कक्षा में कौन-सा व्यवहार उचित है कौन-सा नहीं, तो वे कक्षा में ग़लत बर्ताव करते ही क्यों हैं? इसे समझने के लिए एक और उदाहरण आपसे साझा कर रही हूँ। मैं एक दिन बच्चों के साथ एक कहानी पर काम कर रही थी जिसमें एक बच्चा इसपर सोच रहा होता है कि चींटे को मारे या नहीं। मैंने बच्चों से पूछा, "क्या करना चाहिए इस बच्चे को?" सब बच्चे बोले कि चींटे को नहीं मारना चाहिए। अगले दिन कक्षा में ही एक बच्चे के पास से एक चींटा गुज़र रहा था। इस बच्चे ने उसे हाथ से मार दिया। कितना अजीब लगता है कि बच्चे ने चींटे को मार डाला। कहानी के दौरान बच्चे सचेत होकर सोच रहे थे इसीलिए वे, सही क्या है, इसपर सोच पाए। वे सोच सके कि चींटे को मारना सही नहीं है। जबकि चींटा जब बाजू से गुज़र रहा था, तब बच्चे ने बिना सोचे ही चींटे को मार डाला। इसी प्रकार, जब बच्चे नियम बना रहे होते हैं तो वे सचेत होते हैं। उन्हें इस बात का अहसास होता है कि कक्षा में कौन-सा व्यवहार उपयुक्त होता है। इन नियमों से कक्षा थोड़ी व्यवस्थित हो जाती है। हालाँकि, बच्चों का ध्यान बार-बार इनकी तरफ़ दिलवाना होता है और शिक्षक को भी इन्हीं नियमों के अनुसार काम करना होता है। बार-बार नियमों की तरफ़ ध्यान दिलाना, बातचीत करना, इसलिए भी ज़रूरी है क्योंकि हम बच्चों में आत्म-नियंत्रण विकसित करना चाहते हैं।

तरीक़ा 3

अलग-अलग पैटर्न में तालियाँ बजाना या कहना, कि चलो एक खेल खेलते हैं, भी एक कारगर तरीक़ा है। ये बहुत अजीब है कि 'खेल' शब्द कक्षा में शोर के बावजूद बहुत-से बच्चे सुन लेते हैं। ऐसा ही कई बार तब होता है जब कोई बच्चा कक्षा में रोने लगता है, सभी बच्चे चुप हो जाते हैं। इससे शायद ये निष्कर्ष निकलता है कि बच्चे अनायास ये निर्णय लेते हैं कि किस आवाज़ पर ध्यान देना है, किसपर नहीं। कक्षा 1-2 की पढ़ाई में ऐसी गतिविधियाँ हों जिनमें बच्चों को अपनी जगह से उठकर घूमने-फिरने को मिले। उदाहरण के लिए, ज़मीन पर वर्ण, अल्फ़ाबेट्स या संख्या लिखना और बच्चों से बोली हुई संख्या या वर्ण पर जाने को कहना।

तरीक़ा 4

एक अनुभवी शिक्षक ने मुझसे एक और तरीक़ा साझा किया। उन्होंने कहा कि 1 से 5 तक गिनती गिनो और बच्चों को कहो कि 5 बोलने से पहले सबको बैठ जाना है। मुझे इस तरीक़े पर बहुत संशय था कि गिनती गिनने से बच्चे ऐसे कैसे व्यवस्थित हो जाएँगे। मैंने 15-20 दिनों तक इस तरीक़े को इस्तेमाल नहीं किया। एक दिन थक-हार कर मैंने यह तरीक़ा इस्तेमाल किया। बच्चे सही में बैठ गए। मुझे बहुत आश्चर्य हुआ कि आख़िर इस तरीक़े ने काम कैसे किया? शायद यह बच्चों को एक खेल जैसा लगा। एक और बात समझ आई कि नए-नए तरीक़े अपनाकर देखने चाहिए।

तरीक़ा 5

कक्षा में जब भी ब्लैकबोर्ड पर लिखने के लिए किसी बच्चे को बुलाना होता, सब बच्चे शोर मचाने लगते कि मैं जाऊँगा, मैं जाऊँगा। कहानी सुनाने के दौरान बच्चे एक साथ जवाब

देने लगते थे। इस परेशानी को हल करने के लिए मैंने कक्षा का काम शुरू करने से पहले ही बच्चों को एक-एक पर्ची उठाने को कहा। इस हर एक पर्ची के अन्दर एक संख्या लिखी होती थी। अब जब ब्लैकबोर्ड पर किसी बच्चे को बुलाना होता या कहानी के दौरान बातचीत करनी होती, तो चिट पर लिखी संख्या के अनुसार बच्चे बोलते। इसके अलावा, हाथ उठाना और पूछे जाने पर ही बोलना, ये तरीक़े भी इस्तेमाल किए। एक और तरीक़ा जो बच्चे खेल में यह तय करने के लिए अपनाते हैं कि दाम कौन देगा, वह भी मैंने कक्षा में इस्तेमाल किया। यह तरीक़ा है— वे कोई एक गीत गाते हैं, जैसे अक्कड़-बक्कड़ बम्बे बो और साथ-साथ जितने खिलाड़ी हैं, उनकी तरफ़ इशारा करते जाते हैं। कविता ख़त्म होने पर जिस खिलाड़ी की तरफ़ इशारा हो रहा होता है, उसे दाम देना होता है। यही मैंने कक्षा में भी किया। एक बार कॉपी चेक करते वक़्त कुछ बच्चे आपस में झगड़ने लगे कि मेरी पहले चेक होगी, मेरी पहले चेक होगी। थोड़ी देर में बच्चों ने अक्कड़-बक्कड़ कविता बोलकर निर्णय कर लिया कि कौन पहले कॉपी चेक कराएगा।

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

कक्षा के अन्य पहलू

बेहतर कक्षा संचालन सिर्फ़ शिक्षक पर निर्भर नहीं करता। इसे और कोणों से भी देखने की ज़रूरत है। कक्षा में बच्चों की संख्या, कमरे की बनावट, समाज में बच्चे को लेकर नज़रिया, कक्षा में हो रही गतिविधियाँ, आदि भी कक्षा संचालन को प्रभावित करती हैं।

अकसर बच्चों के प्रति यह नज़रिया होता है कि उन्हें कुछ नहीं आता, और यदि उन्हें कुछ सिखाना है तो डाँटना या मारना ज़रूरी है। पूरे समाज में ही यह नज़रिया व्याप्त है। यह भी कि, स्कूल का मतलब है अनुशासन सीखना, और अनुशासन का मतलब है दिए गए निर्देशों का अनुसरण करना, शोर नहीं करना और चुपचाप बैठकर काम करते रहना। लेकिन सीखने-सिखाने में बातचीत करना, प्रश्न करना भी ज़रूरी है, इसकी समझ होना और तब इसके लिए कक्षा में जगह बना पाना भी कक्षा संचालन के लिए अहम है। बच्चे भी यह समझ पाएँगे कि किसी काम के लिए शोर नहीं, बातचीत ज़रूरी होती है। यह अहसास शुरुआती कक्षाओं से ही बच्चों को होने लगे तो बेहतर है, साथ ही, हम बच्चों को शुरुआत से ही यह महसूस करने में मदद भी कर पाएँ कि जिस तरह शिक्षक की ज़िम्मेदारी है कि वे उनको सिखाएँ, वैसे ही सीखना बच्चों की भी ज़िम्मेदारी है।

कक्षा संचालन पर काम करना बहुत ही संयम और समझ की माँग करता है। नए तरीक़ों को काम में लेने के बावजूद कई बार हम उलझ जाते थे। बार-बार बच्चों को समझाना पड़ता था और कभी-कभी मैं परेशान भी हो जाती। बार-बार बच्चों से यह कहने के बावजूद, कि देखो मेरी कुर्सी से थोड़ा दूरी रखकर एक लाइन में आओ, बच्चे पूरी तरह मुझे घेर लेते। शायद उनको जल्दी रहती हो या कॉपी चेक

चित्र : शिवेन्द्र पांडिया

करवाने की उत्सुकता होती हो। एक दिन मैंने एक लाइन खींची और जो बच्चा पहले कॉपी चेक करवाने आया, उससे कहा कि अब जो भी बच्चा आए, उसको इस लाइन के पीछे खड़ा रहने को बोलना। एक बच्ची लाइन में 2–3 बच्चों के खड़े होने के बावजूद सीधे मुझे अपनी कॉपी देने लगी। मैंने पूछा कि ये लाइन नहीं दिख रही क्या? अब बच्चे भी दूसरे बच्चों को मेरे ही अन्दाज़ (कटाक्ष) में वही बात कहने लगे। ये देखकर मुझे भी हँसी आ गई।

इस उदाहरण से, मैं यह भी साझा करना चाहती हूँ कि हमेशा बच्चे शिक्षक को तंग करने या परेशान करने के लिए उनकी बात नहीं मानते, ऐसा नहीं है। उनकी कई जायज़ इच्छाएँ भी होती हैं, जो हमें ठीक नहीं लगतीं। मसलन, सभी का एक साथ कॉपी चेक कराने आना। क्योंकि हर बच्चा चाहता है कि शिक्षक उनका काम पहले देखे। शुरुआती कक्षाओं में यह बहुत होता है। लेकिन फिर यह भी कि, शिक्षक भी तो इंसान ही हैं, उनकी भी मानवीय सीमाएँ होती ही हैं। कई बार शिक्षक इन जायज़ कोशिशों से भी परेशान हो सकते हैं, और ऐसे में बच्चों को डाँटना ही एक हल लगता है। लेकिन ज़रूरी यह है, कि हम महसूस कर पाएँ कि यह तरीक़ा सही नहीं है और साथ ही बच्चों के साथ काम करने के नए–नए लोकतांत्रिक तरीक़ों के बारे में सोचते रहें। तभी हम उनको भी यह समझने में मदद कर पाएँगे कि आलोचना और सुधार का उदारात्मक रवैया भी हो सकता है।

मीनू पालीवाल अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में 2017 से काम कर रही हैं। आप फ़ेलोशिप प्रोग्राम के ज़रिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से जुड़ीं। इससे पहले उन्होंने 6 वर्ष आईसीआईसीआई बैंक में काम किया। वे अपने मन में आने वाले सवालों की तलाश में शिक्षा और शिक्षण प्रक्रिया से जुड़ीं। प्राथमिक कक्षाओं में बच्चों के साथ काम करना उन्हें अच्छा लगता है।

सम्पर्क : meenu.paliwal@azimpremjifoundation.org

आनुभविक अधिगम के लिए शिक्षकों के प्रयास

ऋषभ कुमार मिश्र

यह लेख एक ऐसे विद्यालय और उसकी कक्षाओं के बारे में है जो गाँधी की नई तालीम की शिक्षा के सिद्धान्तों को केन्द्र में रखते हुए काम कर रहा है। लेखक ने इस स्कूल की उच्च प्राथमिक स्तर की कक्षाओं का अवलोकन किया है। इन कक्षाओं में नई तालीम के सिद्धान्तों को केन्द्र में रखते हुए सीखने-सिखाने का काम हो रहा है। लेखक ऐसी ही एक कक्षा का विस्तृत अवलोकन व विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। किए गए इन अवलोकनों के आधार पर कक्षा शिक्षण के लिए कुछ महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं को भी वे रेखांकित करते हैं। सं.

आनन्द निकेतन वर्धा के सेवाग्राम गाँव में स्थित एक विद्यालय है। इस विद्यालय की संचालिका श्रीमती सुषमा शर्मा इसे 'ए स्कूल इन मेकिंग' की संज्ञा देती हैं, जो साल-दर-साल अपने प्रयोगों से सीखते हुए आसपास के गाँव के बच्चों को बेहतर शिक्षा देने का कार्य कर रहा है। यह स्कूल नई तालीम के सिद्धान्तों को केन्द्र में रखते हुए शिल्प और उत्पादक कार्य आधारित शिक्षण प्रारूप को विकसित करने का प्रयत्न कर रहा है। इसके साथ ही यहाँ किसी भी अन्य विद्यालय की तरह कक्षाओं में पाठ्यपुस्तकों में सुझाई गई सामग्री को ध्यान में रखते हुए विषय-केन्द्रित कक्षा शिक्षण होता है। विद्यालय द्वारा ध्यान रखा जाता है कि कक्षा शिक्षण केवल किताब की सूचनाओं को रटवाने, विषयों की व्याख्या और परीक्षा तक सीमित न हो, कक्षा चर्चा में विद्यार्थियों के अनुभवों और विचारों को स्थान मिले, वे विद्यालयी ज्ञान को अपने वृहत्तर परिवेश के सन्दर्भ में व्याख्यायित कर सकें, और विद्यालय में सीखे ज्ञान का अपने सन्दर्भ में अनुप्रयोग कर सकें। इन लक्ष्यों को ध्यान में रखते हुए विद्यालय के शिक्षक सतत प्रयासरत हैं।

इस विद्यालय में होने वाला कक्षा शिक्षण सीमित संसाधनों वाली ग्रामीण शाला में विद्यार्थियों की बेहतर शिक्षा के लिए होने वाले प्रयासों का उदाहरण है जिसकी अपनी विशेषताएँ और सीमाएँ हैं। इस लेख में आनन्द निकेतन विद्यालय के शिक्षकों के इन्हीं प्रयासों को विश्लेषित किया गया है। इस विश्लेषण का केन्द्रीय प्रश्न है कि इस विद्यालय के शिक्षक, विद्यार्थियों के दैनिक अनुभवों और अवलोकनों का कक्षा में किस तरह से उपयोग करते हैं? इस प्रश्न की पड़ताल के लिए उच्च प्राथमिक कक्षाओं में अध्यापन करने वाले तीन विज्ञान शिक्षकों को भागीदार बनाया गया और इनकी कक्षाओं में 'सरल मशीन', 'कार्य एवं ऊर्जा', 'संसाधन' एवं 'प्रकाश का परावर्तन' प्रकरणों का अवलोकन किया गया। इन चारों प्रकरणों की क्रमशः कक्षा सात, नौ, पाँच और कक्षा छह का अवलोकन किया गया। प्रत्येक कक्षा की अवधि 35 मिनट थी। इन अवलोकनों का विश्लेषण इस लेख में प्रस्तुत है।

कक्षा का आरामदायक और सौहार्द्रपूर्ण वातावरण

आनन्द-निकेतन विद्यालय में कक्षा 9 और 10 को छोड़कर प्रत्येक कक्षा में विद्यार्थी अपनी

चित्र : हीरा धुर्वे

तक पुस्तक से कोई चित्र, इबारती सवाल, क़िस्से-कहानी, नक़्शे आदि का सन्दर्भ न लेना हो, तब तक सभी शिक्षक कक्षा चर्चा के दौरान पुस्तक के प्रयोग को हतोत्साहित करते हैं। कक्षाओं के दैनिक चक्र में गृहकार्य की जाँच, कक्षा चर्चा और पुनः गृहकार्य देने का पैटर्न रहता है। इस पैटर्न के बीच विद्यार्थियों और शिक्षकों के बीच अनुशासन, मौन और तनाव के स्थान पर कक्षा चर्चा के लिए तत्परता, आपसी घनिष्ठता और सहभागिता के लिए उत्साह देखा गया। इस तरह के आरामदायक वातावरण में कक्षा शिक्षण का एक विवरण नीचे दिया गया है।

छोटी टेबल और चटाई के साथ कक्षा के फ़र्श पर बैठते हैं। कक्षा में अध्यापक के लिए भी बैठने की ऐसी ही आरामदायक व्यवस्था है। कक्षा में बैठने के लिए पंक्ति और स्तम्भ के स्थान पर सुविधानुसार वृत्ताकार, आयताकार एवं अन्य तरह की व्यवस्थाएँ बना ली जाती हैं। विद्यार्थी अपने बैग, टिफ़िन एवं अन्य सामग्रियों को कक्षा की दीवारों में बने स्थानों और खूँटियों पर रखते या टाँगते हैं। वे अपने जूते-चप्पल कक्षा के बाहर व्यवस्थित ढंग से रखकर ही कक्षा में प्रवेश करते हैं। आनन्द निकेतन में कालांश के समाप्त होने और नए कालांश के आरम्भ होने के बीच का समय विद्यार्थियों के बीच परस्पर हास-परिहास, बातचीत, कक्षा के बाहर पानी पीने और शौचालय जाने के लिए होता है। इस दौरान अध्यापक की उपस्थिति विद्यार्थियों के लिए किसी अनुशासक जैसी नहीं होती है। अवलोकन के दौरान पाया गया कि प्रत्येक अध्यापक इस अवधि में बच्चों से सौहार्द्रपूर्ण ढंग से बातचीत करते हुए उन्हें कक्षा चर्चा के लिए तैयार करता है। यह अवलोकनीय रहा कि शिक्षक कई बार बच्चों के साथ ही घेरे के बीच बैठकर विषय से सम्बन्धित गतिविधि के साथ कक्षारम्भ करते हैं। जब

कक्षा में पाठ की प्रस्तुति

कक्षा में सरल मशीन का पाठ पढ़ाने के लिए विज्ञान शिक्षक ने विद्यार्थियों के साथ मिलकर विद्यालय परिसर में प्रयोग होने वाली सरल मशीनों के सर्वेक्षण की योजना बनाई। शिक्षक ने कक्षा में पाठ का आरम्भ करते हुए कहा, "बच्चो, अभी हम लोग किताब नहीं निकालेंगे, हम अपने विद्यालय में देखेंगे कि कहाँ-कहाँ ऐसी चीज़ें हैं जो हमारे काम को आसान करती हैं?"

इसके बाद शिक्षक के मार्गदर्शन में विद्यार्थियों ने विद्यालय परिसर में सरल मशीनों

चित्र : हीरा धुर्वे

के उदाहरण खोजे। यह अवलोकनीय रहा कि विद्यार्थियों को स्वतंत्र सर्वेक्षण की बजाय शिक्षक के साथ-साथ चयनित स्थानों पर जाना था। सबसे पहले विद्यार्थी, शिक्षक के साथ कुएँ के पास गए और कुएँ से पानी निकालने के लिए घिरनी को देखा। यहाँ शिक्षक ने बच्चों से पूछा, "घिरनी से क्या लाभ हैं?" इसपर बच्चों ने कहा, "कम ताक़त से पानी निकाल सकते हैं", "कम मेहनत से पानी निकाला जा सकता है", "जल्दी पानी निकाला जा सकता है", आदि। यहाँ शिक्षक द्वारा कोई चर्चा नहीं की गई। इसके बाद शिक्षक ने विद्यार्थियों को कुएँ के समीप खेत में पड़े 'बेलचे' (लोहे का औज़ार, जिसकी मदद से भारी पत्थर हटाया जाता है) को दिखाया। शिक्षक ने ख़ुद इसके द्वारा एक पत्थर हटाया। एक छोटे पत्थर को दो विद्यार्थियों ने बेलचे द्वारा पलट दिया। कुछ अन्य विद्यार्थियों ने भी ऐसे ही प्रयोग दोहराए।

इस दौरान विद्यार्थी ख़ुद लकड़ी का उपयोग करते हुए ऐसी मशीन बनाने का यत्न करते भी दिखे। शिक्षक ने इस प्रयत्न की सराहना की। इसके बाद शिक्षक ने खेत में ही समूह को सम्बोधित करते हुए कहा, "यदि हम बिना किसी वस्तु के सहारे पत्थर को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने की कोशिश करेंगे तो मुश्किल होगी। हमें अधिक बल लगाना होगा, अधिक ऊर्जा का उपयोग होगा। लेकिन बेलचे द्वारा यह कार्य सरलता से हो सकता है। इससे कम समय में ज़्यादा कार्य कर सकते हैं।" इसपर एक विद्यार्थी ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, "इसके बिना कार्य करने के लिए अधिक व्यक्तियों की भी आवश्यकता होगी।" शिक्षक ने उसकी इस व्याख्या को संज्ञान में लेते हुए कहा, "मशीनों का यही तो लाभ है, इससे कम आदमियों द्वारा अधिक कार्य किया जा सकता है।" यहाँ देख सकते हैं कि शिक्षक और विद्यार्थी सरल मशीन की पुस्तक-आधारित परिभाषा का अपने आनुभविक ज्ञान से विस्तार करते हुए इसमें समय और श्रम की बचत जैसे घटकों को भी सम्मिलित कर रहे हैं। इसके बाद शिक्षक विद्यार्थियों को लेकर कृषि के दालान (स्टोर रूम) में गए। वहाँ पर फावड़ा रखा था। शिक्षक ने ख़ुद फावड़ा उठाया और ज़मीन खोदकर दिखाई। कुछ विद्यार्थियों ने भी छोटे फावड़े से ऐसा किया। शिक्षक ने कहा, "फावड़े जैसे औज़ारों के उपयोग के लिए बहुत ज़्यादा प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं है लेकिन यदि ट्रैक्टर चलाना है तो उसके लिए प्रशिक्षण की ज़रूरत होगी।" इसके बाद समूह सिलाई कक्ष में पहुँचा, वहाँ पर सिलाई मशीन को बच्चों ने मशीन के उदाहरण के रूप में पहचाना। इसे जटिल मशीन बताते हुए शिक्षक ने बच्चों का ध्यान सुई-धागे की ओर आकर्षित किया। शिक्षक ने बल दिया कि सुई-धागा सरल मशीन है, जिससे हम अपने काम को आसान कर सकते हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

यहाँ सर्वेक्षण का कार्य समाप्त हो गया। अगले कालांश में शिक्षक, विद्यार्थियों से पिछली कक्षा में की गई गतिविधि के बारे में पुनरावृत्ति प्रश्न पूछते हैं कि आपने जिन-जिन कार्यों को आसानी से होते हुए देखा, उसके बारे में आप क्या सोचते हैं? विद्यार्थियों के उत्तर इस प्रकार थे :

विद्यार्थी 1 : "उन औज़ारों से काम करने में समय कम लग रहा था।"

विद्यार्थी 2 : "आसानी से काम हो रहा था और बहुत ज़्यादा थकावट नहीं हो रही थी।"

विद्यार्थी 3 : "बहुत कम ताक़त की भी ज़रूरत होती है।"

इसी क्रम में कक्षा चर्चा में हस्तक्षेप करते हुए विद्यार्थियों ने अपने रोज़मर्रा के अनुभवों से उदाहरण देना आरम्भ किया।

विद्यार्थी 4 : "यदि हमें अपने घर से बाहर जाना है तो पैदल जाने में ज़्यादा समय लगेगा। साइकिल का उपयोग करेंगे तो उससे कम समय लगेगा। मोटर साइकिल का उपयोग करेंगे तो और कम समय लगेगा और यदि कार का उपयोग करेंगे तो और भी कम। इसका कारण है कि मशीन हमारी ऊर्जा बचाती है और हमारा काम आसान कर देती है।"

चित्र : हीरा धुर्वे

विद्यार्थियों के इस तरह के उदाहरण को 'सरल मशीन' प्रकरण को पढ़ाने के लिए अपेक्षित उत्तर से बाहर जाता देख शिक्षक ने हस्तक्षेप किया और कहा, "ये सभी मशीनें हैं, लेकिन बड़ी और जटिल मशीनें हैं। हम इनकी बात नहीं करेंगे। हम सरल मशीनों पर चर्चा करेंगे जिनके केवल एक या दो पार्ट्स होते हैं और जो हमारे दैनिक जीवन में काम आती हैं। सरल मशीन का उपयोग सीखने के लिए हमें बहुत ज़्यादा प्रशिक्षण की ज़रूरत नहीं होती है। इन मशीनों को चलाने के लिए एक बार समझा देना काफ़ी होता है। जैसे आपको किसी ने स्टेपलर प्रयोग करना एक बार बताया होगा और आप लगातार उसको करते आ रहे हैं। आपने सुना होगा, गाड़ियाँ ख़राब होती हैं, प्लेन ख़राब होते हैं, जिन्हें सुधारने में महीनों लग जाते हैं लेकिन क्या आपने कभी सुना है कि नेल कटर ख़राब हो गया या हँसिया ख़राब हो गया या कुल्हाड़ी ख़राब हो गई या अपनी सुई ख़राब हो गई और यदि कुछ ऐसा होता भी है तो हम स्वयं उसका निराकरण कर लेते हैं। यही सरल मशीन हैं।"

विज्ञान शिक्षक की उपयुक्त व्याख्या सरल मशीन की अवधारणा के सन्दर्भ में पुस्तकेतर ज्ञान के प्रयोग का उदाहरण है। प्रथमतः, शिक्षक ने सरल और जटिल मशीन में अन्तर के लिए 'बड़ी मशीन' जैसी बोलचाल की शब्दावली का प्रयोग किया। उसने मशीन की जटिलता को व्यक्त करने, उसे चलाने के लिए आवश्यक प्रशिक्षण को एक प्रमुख आधार बताया। इस तरह के संकेत पाठ्यपुस्तक में नहीं थे। इस तरह की व्याख्या वैज्ञानिक अवधारणा और बच्चों के दैनन्दिन अवलोकनों में विरोधाभास की स्थिति पैदा करती है। प्रस्तुत कक्षा में भी यही हुआ। शिक्षक-प्रतिपादित तथ्य 'बड़ी मशीन को चलाने के लिए प्रशिक्षण की आवश्यकता' के समर्थन में बच्चों ने साइकिल और स्कूटर का उदाहरण दिया, लेकिन एक विद्यार्थी द्वारा मिक्सी (मसाला पीसने की मशीन) के उदाहरण द्वारा इससे असहमति व्यक्त की गई। इस विद्यार्थी ने बताया कि एक बार माँ के साथ देख लेने के बाद वह भी मिक्सी चला सकता है। उसका सवाल था कि मिक्सी सरल मशीन है या जटिल। अब शिक्षक द्वारा प्रतिपादित संकेतक की सीमा उजागर हो रही थी। यहाँ शिक्षक ने मिक्सी को जटिल मशीन बताया और इसके समर्थन में कहा कि इसके एक से अधिक अंग होते हैं और इसके बिगड़ जाने पर ठीक करना कठिन होता है। बड़ी मशीनें बहुत अधिक पार्ट से मिलकर

बनी होती हैं। ये ख़राब होने पर बहुत जल्दी सुधरती नहीं हैं।

इस चर्चा को समाप्त करते हुए शिक्षक ने जटिल मशीन की विशेषता बताते हुए कहा कि इसके बहुत सारे पार्ट होते हैं और प्रत्येक पार्ट एक दूसरे से जुड़ा होता है। शिक्षक ने आगे बताया कि जब यह मशीन ख़राब होती है तो हमें मैकेनिक के पास जाना पड़ता है जो उस मशीन से सम्बन्धित प्रशिक्षण लिए होता है।

मशीन की चर्चा के बाद शिक्षक ने कक्षा में किताब का उपयोग करते हुए आनत तल की अवधारणा पर चर्चा आरम्भ की। विद्यार्थियों को इस अवधारणा से परिचित कराते हुए शिक्षक ने बताया कि जब किसी मोटर एजेंसी पर ट्रक से मोटर साइकिल को उतारा जाता है तो हमें एक प्लेंक लगानी पड़ती है। इसी तरह रेलवे स्टेशन पर जब यात्रियों के पास बहुत ज़्यादा सामान होता है तो वे सीढ़ियों का इस्तेमाल न करके उसके बग़ल में बने प्लेन रास्ते का उपयोग करते हैं। यहाँ शिक्षक स्वयं ही उदाहरण और व्याख्याएँ प्रस्तुत कर रहे थे और बच्चों की भूमिका केवल श्रोता की थी। शिक्षक ने किताब से आनत तल का चित्र देखने का निर्देश दिया और उसकी व्याख्या की। अगले दिन शिक्षक ने विद्यार्थियों के साथ इस सवाल से कक्षा शुरू की कि कृषि कार्यानुभव के दौरान खेत में मिलने वाले भारी पत्थर को कैसे हटाया जाता है? विद्यार्थियों के आरम्भिक जवाबों में 'मिलकर उठाने', 'तोड़कर हटाने' जैसे जवाब थे। फिर शिक्षक ने पिछली कक्षा में बाँस की लकड़ी से पत्थर हटाने की गतिविधि की ओर संकेत किया। इसपर बच्चों ने कृषि अध्यापक द्वारा इस तरीक़े के इस्तेमाल पर सहमति दी। एक विद्यार्थी ने जोड़ा कि जब पत्थर बड़ा और भारी होता है तो कृषि शिक्षक इसके लिए लोहे की रॉड का प्रयोग करते हैं। शिक्षक ने इस विद्यार्थी से उक्त प्रयोग को विस्तार से प्रस्तुत करने के लिए कहा और उसकी प्रस्तुति को पुनर्बलित करते हुए ब्लैकबोर्ड पर एक रेखाचित्र बना दिया। इस दौरान शिक्षक ने मज़ाक़-मज़ाक़ में कक्षा से पूछा कि इस बड़े से पत्थर को उठाने के लिए कैसी बॉडी चाहिए? शिक्षक द्वारा यह हस्तक्षेप कक्षा को और स्वाभाविक बनाने के लिए किया गया था। शिक्षक ने बताया कि कृषि अध्यापक जिस सरल मशीन का प्रयोग करते हैं उसे लीवर या उत्तोलक कहते हैं। इसपर विद्यार्थियों ने भी कुछ और उदाहरण दिए। जैसे— यदि हम अलमारी के पीछे सफ़ाई करना चाहें तो उसको एक जगह से दूसरी जगह सरकाने के लिए हम उत्तोलक का प्रयोग कर सकते हैं। इस मोड़ तक आते-आते शिक्षक को पाठ पूरा करने की चिन्ता होने लगी थी। इसके बाद वे बच्चों की भागीदारी को सीमित करते हुए व्याख्यान द्वारा उत्तोलक के भाग और प्रकार की चर्चा करने लगे। इस दौरान शिक्षक ने पाठ्यपुस्तक से पूरा-का-पूरा अवतरण पढ़कर उसकी व्याख्या की।

बाक़ी कक्षाओं के अवलोकनों का विवरण न देकर यहाँ उन बिन्दुओं का विवरण और विश्लेषण है जो इन कक्षाओं में अवलोकित हुए और कक्षा शिक्षण की प्रक्रियाओं के बारे में कुछ दिशा व समझ देते हैं।

शिक्षक द्वारा कक्षा में विद्यार्थियों के दैनन्दिन ज्ञान और अनुभवों का उपयोग

इस कार्य में शिक्षकों द्वारा विद्यार्थियों के दैनन्दिन ज्ञान और अनुभवों के उपयोग के चार प्रारूप देखे गए :

1. विद्यार्थियों के परिवेश से चयनित उदाहरणों की व्याख्या

इस प्रारूप में शिक्षक, विद्यार्थियों के परिवेश से उदाहरणों को चुनकर उनकी सहायता से विषय विशेष की अवधारणाओं की व्याख्या करते हैं। इस व्याख्या में शिक्षक रोज़मर्रा की शब्दावली में अवलोकनीय भौतिक वस्तुओं और घटनाओं का सन्दर्भ लेते हैं। इन सन्दर्भों से विद्यार्थी भलीभाँति परिचित होते हैं। इस कारण वे अमूर्त अवधारणाओं की व्याख्या को समझते हैं। यह अवलोकनीय रहा

है कि इस प्रारूप में विद्यार्थियों के लिए हस्तक्षेप और भागीदारी का अवसर अपेक्षाकृत कम रहता है। केवल शिक्षक के व्याख्यान की प्रधानता होती है। उदाहरण के लिए, मृदा संसाधन के विषय में चर्चा करते हुए शिक्षक ने काली मृदा की विशेषताओं को स्वयं ही बताया जबकि विद्यालय के बच्चों को कृषि कार्यानुभव के कारण काली मृदा का पर्याप्त अनुभव था। शिक्षक विद्यार्थियों के कार्यानुभव का सन्दर्भ ले रहे थे लेकिन विद्यार्थियों को बोलने और अनुभव साझा करने का मौक़ा नहीं दिया गया।

ऐसे ही 'प्रकाश का परावर्तन' प्रकरण के दौरान ध्वनि और प्रकाश की गति में अन्तर के लिए शिक्षक रेलवे स्टेशन पर इंजन की आवाज़ और प्रकाश का उदाहरण लेकर चर्चा कर रहे थे, लेकिन कक्षा में अनेक विद्यार्थी जो स्टेशन के क़रीब रहते थे, उन्हें अवलोकनों को साझा करने के लिए आमंत्रित नहीं किया गया। इन स्थितियों में विद्यार्थियों के पास शिक्षक की व्याख्या से सहमति प्रकट करने के अलावा कोई विकल्प नहीं था। चूँकि उदाहरण उनके परिवेश से रहता था, इस कारण वे उससे जुड़ते थे लेकिन उनकी सहभागिता नगण्य रहने के कारण कक्षा में विद्यार्थियों की भूमिका सीमित हो जाती थी। शिक्षक की दृष्टि से उनके द्वारा उदाहरणों का चुनाव उनके शिक्षण को किताबी ज्ञान की दुनिया के बाहर ले जा रहा था लेकिन वे इस पक्ष पर मनन नहीं कर रहे थे कि उनकी कक्षा, ज्ञान के सह-निर्माण की प्रक्रिया से दूर थी।

इसी प्रकरण में ऐसी ही एक और घटना दिखी जहाँ शिक्षक ने बच्चों की खेल कार्यशाला से लेज़र लाइट मँगाकर उसके आधार पर प्रकाश के परावर्तन को समझाने का प्रयोग किया। लेकिन इस दौरान उन्होंने यह जानने का प्रयत्न नहीं किया कि क्या किसी विद्यार्थी ने खेल कार्यशाला में लेज़र लाइट से सम्बन्धित कोई इस जैसा प्रयोग किया है? जबकि कक्षा के कुछ विद्यार्थी आपस में लेज़र लाइट के प्रयोग पर बात कर रहे थे। इस प्रारूप में कक्षा चर्चा पूर्णतया शिक्षक द्वारा चुने हुए उदाहरणों, अनुभवों, प्रयोगों एवं उससे सम्बन्धित शिक्षक व्याख्या पर केन्द्रित थी।

2. विद्यार्थियों की भागीदारी लेकिन अधिगम अन्तराल अनुत्तरित

द्वितीय प्रारूप में पाया गया कि शिक्षकों ने पाठ को बच्चों के सन्दर्भ से जोड़ने की योजना बनाई। उन्होंने अपनी-अपनी दृष्टि से उपयुक्त उदाहरण, व्याख्या, प्रदर्शन और प्रयोग, आदि का चुनाव किया। इन प्रयोगों में शिक्षकों ने विद्यार्थियों को सहभागिता के लिए आमंत्रित तो किया, लेकिन इस दौरान विद्यार्थियों की वैकल्पिक अवधारणाओं और विषय न समझ में आने जैसी चुनौतियों का संज्ञान नहीं लिया। शिक्षक इस विश्वास के साथ कार्य कर रहे थे कि उनकी व्याख्या के उपरान्त अस्पष्टता और वैकल्पिक अवधारणाओं के लिए कोई स्थान नहीं बचता है। उदाहरण के लिए, प्रकाश परावर्तन

चित्र : हीरा धुर्वे

प्रकरण के दौरान शिक्षक ने कक्षा को खिड़की से आ रही किरण का अवलोकन करने का निर्देश दिया। उन्होंने विद्यार्थियों से पूछा कि खिड़की से आते हुए प्रकाश में उन्हें क्या दिखाई दे रहा है? विद्यार्थियों ने उत्तर भी दिया कि धूल-कण आदि दिख रहे हैं। इस चर्चा को आगे बढ़ाते हुए शिक्षक ने कहा कि प्रकाश को संचरण के लिए माध्यम की आवश्यकता नहीं होती। इस दौरान खिड़की से आता प्रकाश, लटकते धूल-कण, हवा का प्रभाव, आदि विषयों पर विद्यार्थी सोच रहे थे। उनसे इनपर बात करने की बजाय पाठ तेज़ी से इस वैज्ञानिक ज्ञान की ओर बढ़ गया कि "प्रकाश के संचरण के लिए माध्यम की आवश्यकता नहीं होती।" इस तरह से विद्यार्थियों के प्रश्न और उनकी वैकल्पिक अवधारणाएँ अनुत्तरित रह गईं। ऐसी ही स्थिति सरल मशीन के प्रकरण में भी आई थी। इस तरह की स्थितियों में विद्यार्थियों की ख़ुद की वैकल्पिक अवधारणाएँ अनुत्तरित रह जाती हैं। शिक्षक द्वारा जिन तथ्यों और परिभाषाओं पर बल दिया जाता है, विद्यार्थी उन्हें सत्य मान लेते हैं। उनके लिए जाँचने या ख़ुद करने का अवसर नहीं होता है। इसका दुष्प्रभाव यह होता है कि जब इस 'बताए हुए' ज्ञान का अनुप्रयोग करना होता है, तो वे अमूर्त अवधारणाओं और वास्तविक परिस्थितियों में सम्बन्ध विकसित नहीं कर पाते हैं।

चित्र : हीरा धुर्वे

3. विद्यार्थियों को स्वतः खोज के लिए अवसर देना

तीसरे प्रारूप में शिक्षकों ने विद्यार्थियों को कक्षा चर्चा में विद्यालयी ज्ञान के समर्थन, व्याख्या और उदाहरण के लिए आमंत्रित किया। विद्यार्थियों ने अपने अनुभवों और अवलोकनों के आधार पर इस चर्चा में भागीदारी का प्रयत्न किया। शिक्षकों ने उनके योगदान की सराहना की और समस्याओं का निराकरण किया। इस तरह के प्रारूप की विशेषता थी कि विद्यार्थियों ने ख़ुद को कक्षा का एक महत्त्वपूर्ण भागीदार माना और वे ख़ुद से प्रकरण के विस्तार में संलग्न हुए। इस प्रारूप में उनके योगदान की अपूर्णता के बावजूद उसे ख़ारिज न करते हुए भविष्य में संवाद की सम्भावना को क़ायम रखा गया। उदाहरण के लिए, कार्य और ऊर्जा प्रकरण के दौरान एक विद्यार्थी ने कंचे के खेल के माध्यम से स्थितिज ऊर्जा के गतिज ऊर्जा में रूपान्तरण को समझाने का प्रयास किया। उसने कहा, "जब अँगुली पर रखकर कंचे को पीछे की ओर खींचकर छोड़ते हैं तो वह कंचा जिस दूसरे कंचे से टकराता है, उसे गतिमान कर देता है। पहले कंचे को अँगुली से ऊर्जा मिली थी।" यहाँ वह एक विशेष कंचे की स्थिति के कारण स्थितिज ऊर्जा की ओर संकेत करना चाह रहा था। शिक्षक ने उसके उदाहरण की सराहना की और स्वयं के उत्तर में अन्तराल की व्याख्या की। ऐसे ही सरल मशीन प्रकरण में शिक्षक ने उत्तोलक के उदाहरण देने के लिए विद्यार्थियों को आमंत्रित किया। उदाहरण के बाद जब विद्यार्थियों से आलम्ब, आयास और भार के बारे में पूछा गया तो कुछ ने इसका सही

जवाब नहीं दिया। इस स्थिति में शिक्षक ने इन विद्यार्थियों को उक्त बिन्दुओं की सही स्थिति के आकलन के लिए संकेत और सुझाव दिए। इस तरह के प्रारूप में विद्यार्थी विद्यालयी ज्ञान का अनुप्रयोग करते हुए अपने परिवेश से स्वयं उदाहरण खोजने का कार्य कर रहे थे। शिक्षक के लिए भी इस तरह के अवसर विद्यार्थियों की समझ के आकलन की तरह थे।

4. कक्षेतर गतिविधियों का आयोजन

चौथे प्रारूप में शिक्षकों और विद्यार्थियों ने मिलकर आसपास के अवलोकनों और गतिविधियों के माध्यम से कक्षा चर्चा को समृद्ध किया। इस तरह के प्रकरणों में विद्यार्थियों की भागीदारी अधिक थी लेकिन इस तरह की गतिविधियाँ विषय ज्ञान की दृष्टि से प्रकरण को परिचित कराने या सरल अवधारणाओं के उदाहरण खोजने पर आधारित थीं। उदाहरण के लिए, सरल मशीन प्रकरण के आरम्भ में विद्यार्थियों ने शिक्षकों के साथ मिलकर परिसर की सरल मशीनों का सर्वेक्षण किया। यह सर्वेक्षण गहन था। इसमें विद्यार्थियों ने रुचि भी ली, लेकिन यह सत्र आवश्यकता से अधिक लम्बा हो गया। इस तरह के प्रारूप में जब भी शिक्षक कक्षा चर्चा को विद्यार्थियों के जीवन और परिवेश से जोड़ते थे तो बच्चे कक्षा चर्चा में पहल करते थे। वे विषय ज्ञान के लिए अपने परिवेश से उदाहरण देते थे जैसे उन्होंने अपने अभिभावकों द्वारा घरेलू कार्यों में मशीनों के प्रयोग और जुगाड़-मशीन के निर्माण का उदाहरण दिया। ऐसे ही सोलर पैनल के भ्रमण के बाद कुछ विद्यार्थियों ने अपने-अपने घर की सोलर लाइट का उदाहरण दिया। उसके आकार और प्रकाश की मात्रा पर चर्चा की। इसी तरह संसाधन प्रकरण में विद्यार्थियों ने बताया कि मिट्टी के कणों में बने छेद पानी को रोकें, इसलिए खेत की जुताई का महत्त्व होता है। एक अन्य अवलोकन में पाया गया कि विद्यार्थियों ने पानी की टंकी से जल के निकलने में दबाव की भूमिका का उदाहरण अपने घर के अनुभवों के आधार पर साझा किया। दबाव और प्लवन के
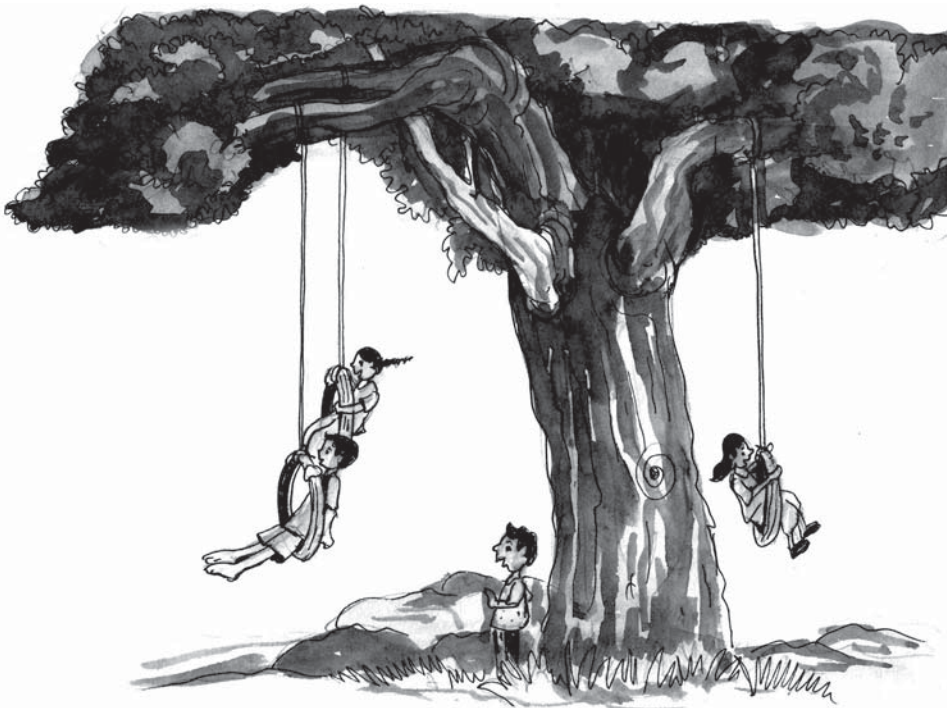
चित्र : हीरा धुर्वे

प्रकरण में विद्यार्थियों के एक समूह ने नींबू को सादे पानी और नमक के पानी में डुबाने का प्रयोग घर पर किया और शिक्षक के साथ साझा किया। कुछ बच्चों के कहने पर विद्यालय के रसोईघर से सामग्री मँगाकर कक्षा में यह प्रयोग पुनः दोहराया गया।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि आनन्द निकेतन के शिक्षक कहीं-कहीं परम्परागत शिक्षकों की तरह किताब से सीधे व्याख्यान दे रहे हैं, वहीं दूसरी तरफ़ कक्षा में आनुभविक अधिगम के लिए भी प्रयत्नशील हैं। उनमें यह स्पष्टता है कि अर्थपूर्ण अधिगम के लिए कक्षा में विद्यार्थियों के आनुभविक जीवन को सम्मिलित करने की ज़रूरत होती है। इसके द्वारा वे विद्यार्थियों को अमूर्त अवधारणाओं को समझाने में मदद करते हैं। वे विद्यार्थियों को कक्षा के सक्रिय भागीदार की मान्यता देते हैं और इसके अनुरूप उनके अनुभवों को वैध सामग्री के रूप में कक्षा में स्थान देते हैं। उपर्युक्त चारों प्रारूपों में देखा जा सकता है कि शिक्षक, शिक्षण को सन्दर्भ–आधारित बनाने के लिए कक्षेतर परिवेश और गतिविधियों के माध्यम से विषय ज्ञान की प्रस्तुति करते हैं। वे ऐसी गतिविधियों का चुनाव करते हैं, जो विद्यार्थियों के दैनन्दिन जीवन से जुड़ी होती हैं और इनमें विद्यार्थी भी रुचि लेते हैं। वे वास्तविक दुनिया और आसपास उपलब्ध सामग्रियों, समस्याओं और संसाधनों का प्रयोग करते हैं। फिर भी, कक्षा में विद्यार्थी, शिक्षक के निर्देशों और प्रश्न–उत्तर मॉडल का अनुगमन करते हैं लेकिन जैसे ही कक्षा में उनके दैनिक अनुभवों की उपस्थिति की सम्भावना बनती है, उनकी स्वयं की पहल बढ़ जाती है। जब प्रकरण को उनके परिवेश और सन्दर्भ से जोड़ा जाता है तो उनकी सहभागिता उदाहरणों, अनुभवों के माध्यम से प्रकट होने लगती है। इस दौरान वे अपने अवलोकनों और प्रश्नों को कक्षा के सामने रखते हैं। इससे यह भी ज्ञात होता है कि विषय ज्ञान या अमूर्त अवधारणाओं के परिचय से पूर्व ही विद्यार्थियों के पास समृद्ध आनुभविक ज्ञान होता है। जब उन्हें कक्षा में रोज़मर्रा की भाषा में अपने अनुभवों को अभिव्यक्त करने की स्वतंत्रता मिलती है तो वे शिक्षक द्वारा बताई गई और पाठ्यपुस्तक की सूचनाओं को दोहराने, शिक्षकों के प्रश्नों का अनुबन्धित उत्तर देने और शिक्षक के व्याख्यान को सुनने से आगे बढ़कर दैनन्दिन अनुभवों को विषय ज्ञान से जोड़ते हैं, विषय ज्ञान और दैनन्दिन अनुभवों के बीच विरोधाभास को पहचानते हैं और विद्यालयी ज्ञान का अनुप्रयोग करते हैं।

ऋषभ कुमार मिश्र महात्मा गाँधी अन्तरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा के शिक्षा विभाग में अध्यापक हैं। शिक्षा और समाज से जुड़े विषयों पर लेखन में सक्रिय हैं। इन्होंने केन्द्रीय शिक्षा संस्थान, दिल्ली विश्वविद्यालय से 'बच्चों की सामाजिक विज्ञान की समझ' विषय पर शोध कार्य किया है।

सम्पर्क : rishabhrkm@gmail.com

भाग से क्यों भागना!

अंकित शुक्ल

प्राथमिक स्तर पर गणित सीखना जितना चुनौतीपूर्ण एक बच्चे के लिए होता है उतना ही चुनौतीपूर्ण उस अध्यापक के लिए गणित सिखाना होता है जो चाहता है कि बच्चों में गणितीय अवधारणाओं की ठीक समझ विकसित हो। ऐसे शिक्षक निरन्तर उन विधाओं की खोज और प्रयोग में रहते हैं जो बच्चों के लिए मददगार सिद्ध हो सकें। प्रस्तुत लेख में एक ऐसा ही प्रयोग है। शिक्षक ने भाग की अवधारणा पर काम करने के लिए मुद्राओं का उपयोग किया है। मुद्राएँ गणित की अमूर्तता को कुछ हद तक कम करती हैं, साथ ही गणित को जीवन के व्यवहारिक उदाहरणों से जोड़ती भी हैं। आप देख सकेंगे कि बच्चे अपने स्वाभाविक ज्ञान का उपयोग करते हुए कैसे भाग की मानक प्रक्रिया की ओर बढ़ते हैं। सं.

पृष्ठभूमि

भाग गणित की एक ऐसी संक्रिया है जिससे अधिकतर लोग भागते नज़र आते हैं। यही स्थिति वयस्कों की भी है और बच्चों की भी। बच्चों की स्थिति पर ग़ौर करें तो, एनुअल स्टेटस ऑफ़ एजुकेशन रिपोर्ट और नेशनल अचीवमेंट सर्वे दोनों की ही रिपोर्ट इस बात का दावा करती हैं कि कक्षा 8 के बच्चे भी भाग की संक्रिया को अच्छे तरीक़े से नहीं कर पाते। केवल भाग ही नहीं, बल्कि गणित की किसी भी अवधारणा को सीखना बच्चों के लिए अकसर चुनौतीपूर्ण रहता है।

स्कूल में बच्चों के सीखने की स्थिति कोविड के बाद और भी चुनौतीपूर्ण हो गई है। इस लेख में, कोविड के लम्बे लॉकडाउन के बाद बच्चों के साथ गणित शिक्षण पर काम करने के अनुभव प्रस्तुत हैं। यह अनुभव भाग की संक्रिया पर काम करने के हैं।

छत्तीसगढ़ में कोविड के बाद जब स्कूल खुले तो शिक्षकों को बच्चों के साथ काम करने में बहुत-सी चुनौतियाँ आ रही थीं। अधिकांश बच्चे नियमित रूप से स्कूल नहीं आ रहे थे। जहाँ भी बच्चे नियमित आ रहे थे, वहाँ उनके सीखने पर काम प्रारम्भ हो रहा था। एक स्कूल भ्रमण में मैंने देखा कि एक शिक्षक साथी को बच्चों के साथ भाग पर काम करने में बहुत समस्या आ रही थी। उनके साथ मिलकर इस अवधारणा पर काम करने की एक योजना बनाई गई जिसमें भाग की मूल अवधारणाओं, जैसे– बराबर बाँटना, घटाना आदि, से शुरू करते हुए भाग को समझने की तरफ़ बढ़ने की एक प्रक्रिया की शुरुआत की गई।

पूर्व ज्ञान

हम सब जानते हैं कि गणित की किसी अवधारणा को जानने के लिए इससे पहले की अवधारणाओं की गहरी समझ होना आवश्यक है। अगर हम भाग की बात करते हैं तो इससे पहले की अवधारणाएँ, जैसे– संख्या समझ, समूह की समझ, स्थानीय मान, घटाव, गुणा / पहाड़ा, आदि की समझ होना ज़रूरी हो जाता
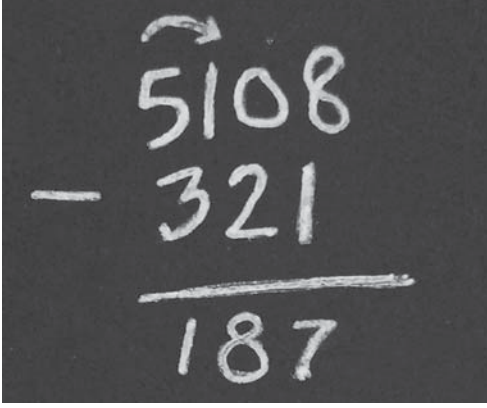
चित्र 1

है। बच्चों में इन सबकी समझ को जाँचने के लिए उन्हें कुछ सवाल हल करने को दिए गए। उन्होंने दिए गए सवाल हल कर लिए।

कहानी से शुरुआत...

सवालों के बाद मैंने एक कहानी से काम की शुरुआत करने की योजना बनाई। कहानी इसलिए क्योंकि कहानियाँ बच्चों को रोचक लगती हैं और उन्हें वे ध्यान लगाकर सुनते हैं।

कक्षा में बच्चों से शुरुआती बातचीत के बाद मैंने पूछा, "कहानी सुनोगे?" सभी बच्चों ने उत्साहपूर्वक एक स्वर में 'हाँ' कहा। मैंने कहानी शुरू की :

एक गाँव का नाम था भगोरा। उस गाँव में एक किसान रहता था जिसका नाम रामदीन था। किसान के तीन बेटे थे– लोटा, जलोटा और पलोटा। लोटा बहुत चालाक था। वह चाहता था कि हर बार उसे अधिक मुनाफ़ा हो। कभी वह अनाज की अधिक बोरियाँ रख लेता तो कभी चुपचाप अनाज बेच देता। वहीं पलोटा बहुत आलसी था। उसको जो मिलता, रख लेता। जलोटा को अपने भाइयों की ये आदतें पसन्द नहीं थीं, पर वह लिहाज़ के कारण कुछ कहता न था।

लोटा की धूर्तता धीरे-धीरे बढ़ती गई और आख़िर एक दिन तीनों भाइयों में लड़ाई हो गई। वे अपने पिता रामदीन के पास आकर बोले, "पिताजी! हमें साथ काम नहीं करना। हमारा बँटवारा कर दीजिए।"

रामदीन यह सुनकर बहुत दुखी हुआ किन्तु कुछ सोचकर उसने कहा, "ठीक है। मैं तुम्हें तुम्हारा हिस्सा दे दूँगा। लेकिन तुम्हें हर बार की तरह बेहतर फ़सल उगाकर दिखाना होगा, नहीं तो मैं सबकुछ बेच दूँगा और किसी को कुछ नहीं मिलेगा।"

किसान के पास तीन खेत, तीस बोरी अनाज और तीन घर थे।

तीन खेतों को तीनों बेटों में बराबर बाँटना था। एक बेटे को कितना मिला होगा?

इसपर बच्चों ने कहा, "तीनों को एक-एक खेत मिला होगा।"

तीस बोरी अनाज को तीन बेटों में बाँटना था, प्रत्येक बेटे को कितना मिला होगा?

इसपर बच्चों ने कहा, "दस-दस बोरी अनाज हर एक को मिला होगा।"

ऐसे ही तीनों को एक-एक घर भी मिला होगा।

सभी बेटों को अपना-अपना हिस्सा मिल गया।
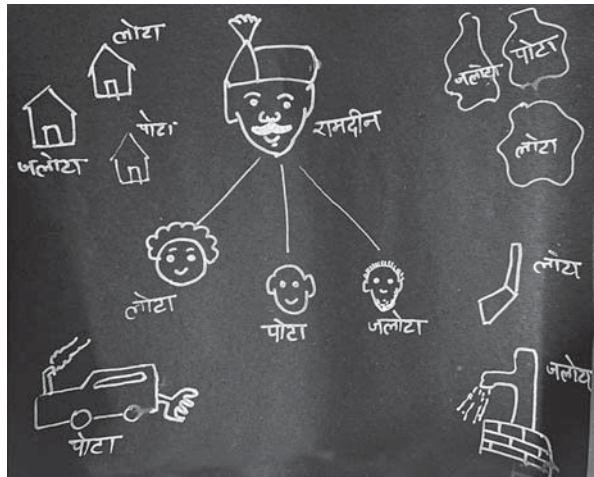
चित्र 2

पर रामदीन के पास एक ट्रैक्टर भी था, उसे वह बराबर नहीं बाँट सका। उसने अपने बेटों से कहा कि वे समय आने पर खेतों की जुताई के लिए ट्रैक्टर का उपयोग कर लें।

बारिश का मौसम आया। सभी बेटे अपनी-अपनी खेती में लग गए। किन्तु अनुभव की कमी और अकेले-अकेले काम करने के कारण वे अच्छी फ़सल नहीं ले पाए। वे बहुत दुखी हुए। उन्हें एहसास हो गया कि साथ मिलकर करने से काम आसान हो जाता है।

कहानी सुनाने के बाद जब शिक्षक से बात हुई तो उन्होंने बताया कि प्राय: चुप रहने वाले बच्चे भी कहानी के दौरान बहुत मुखर रूप से अपनी बात रख रहे थे। उन्होंने यह भी बताया कि बहुत-से बच्चे ऐसे थे जिन्हें पहले संख्या की समझ नहीं थी, वे भी संख्या को पहचान पा रहे थे।

बराबर–बराबर बाँटना...

अब मैंने बच्चों के साथ वास्तविक वस्तुओं को बाँटने का खेल शुरू किया। एक छात्रा ने पहले चार पुस्तकों को चार बच्चों में एक-एक कर बाँट दिया। इसपर उससे बात की गई। उसने बताया कि चार पुस्तकों को चार लोगों में बाँटने पर हर एक को एक-एक पुस्तक मिलेगी। हालाँकि इस कथन को गणितीय रूप में लिखने को कहने पर वह नहीं लिख पाई।

इसके बाद दूसरे छात्र को बुलाया और ब्लैकबोर्ड पर चॉकलेट के आठ चित्र बनाए। उन चित्रों को चार बच्चों में बाँटने के लिए कहा गया।

"यह कितने चॉकलेट हैं?"

"आठ हैं।"

"अब यह 8 चॉकलेट तुमको अपने चार दोस्तों– चैन कुमारी, मन्नत, तराना और आदित्य को बाँटना है। कैसे बाँटोगे?"

"सबसे पहले एक-एक दूँगा।"

"तो फिर कितना बचेगा?"

"चार बचेगा सर!"

"और बाँट पाओगे क्या?"

"हाँ सर!... एक-एक और मिल जाएगा इन लोगों को।"

"अच्छा! अब इन चारों के पास कितने-कितने चॉकलेट होंगे?"

"सबके पास दो-दो चॉकलेट होंगे।"
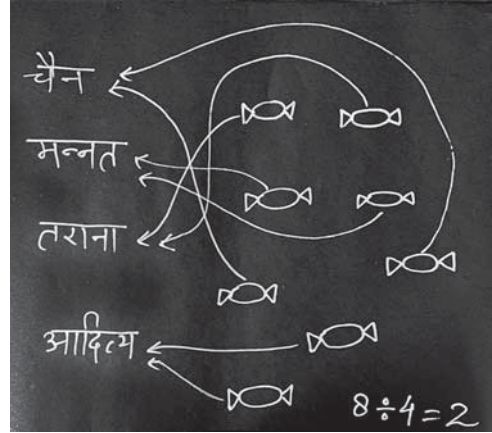
चित्र 3

"अच्छा! अब इसको बोर्ड पर लिखकर बताओ।"

एक अन्य बच्चे को बुलाया। बोर्ड पर कुछ आम बनाए और उन्हें दो लोगों में बाँटने को
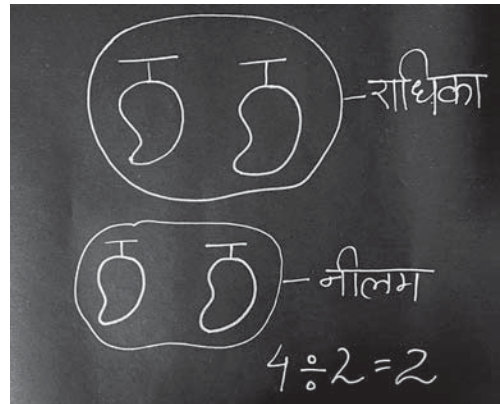
चित्र 4

कहा। उस छात्र ने सीधे बोला, "सर! चार आम दो लोगों में बाँटना हैं तो दोनों को दो-दो आम मिलेंगे।"

और फिर उसने उसका गणितीय रूप बोर्ड पर लिखा।

यह पूरी गतिविधि करने के बाद बच्चों में और उत्साह आ गया था। सभी बच्चे, 'मुझे बुलाइए', 'मुझे बुलाइए' बोलकर चिल्ला रहे थे। इस पूरी प्रक्रिया को शिक्षिका पीछे बैठकर बहुत ध्यान से देख रही थीं। इसके बाद मैंने एक और बच्चे को बुलाया जो कक्षा में थोड़ा शान्त प्रतीत हो रहा था। फिर मैंने बोर्ड पर कुछ चित्र बनाए और उससे कहा, "दो लोगों में यह लड्डू बाँटना हैं।" उसने कहा, "सर! पूरा नहीं बँट पाएगा क्योंकि 17 लड्डू हैं और 2 लोगों में बाँटना हैं।"

मैंने उससे कहा, "दिखाओ, कैसे नहीं बँटेगा?"
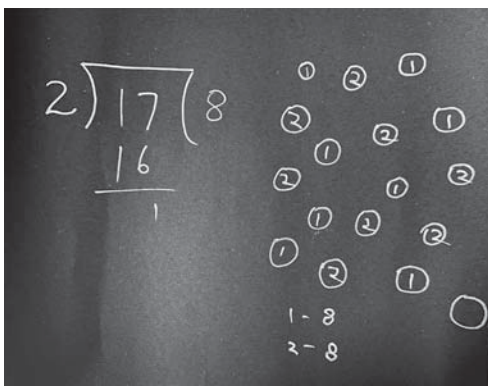
चित्र 5

उसने कुछ ऐसे बताया

अगर चित्र को थोड़ा ध्यान से देखेंगे तो प्रत्येक गोले में 1 या 2 लिखा हुआ है। इसका मतलब यह है कि कुल 8 लड्डू पहले व्यक्ति को मिलेंगे और 8 दूसरे को।

एल्गोरिदम की तरफ़...

इन गतिविधियों के बाद मुझे यह समझ में आया कि बच्चों को भाग की मूल अवधारणा और इसके सन्दर्भों, अर्थात समूहीकरण और बराबर-बराबर बँटवारा की समझ भी है और भाग के चिह्न की पहचान भी। बच्चों को भाग की शब्दावलियों, मसलन, शेष किसे कहेंगे, भाजक क्या है, इत्यादि की भी थोड़ी-बहुत समझ है। अब उनको भाग की संक्रिया की तरफ़ ले जाना था। इसके लिए मैंने कुछ नक़ली रुपयों का उपयोग किया।

मैंने उनसे एक प्रश्न पूछा, "115 रुपए 3 लोगों में बाँटोगे तो प्रत्येक को कितना मिलेगा?"

बच्चे अपनी कॉपी में सवाल हल करने में जुट गए। मैंने सभी को रोक दिया। उनमें से एक बच्चे को बुलाया और कहा कि तुम्हारे सामने यह नोट रखे हुए हैं। अब तुमको इस बण्डल में से 115 रुपए निकालने हैं और इन्हें 3 लोगों में बाँटना है। उस नोट के बण्डल से बच्चे ने सबसे पहले सौ का एक नोट, दस का एक नोट और एक-एक के पाँच नोट निकाले और कहा, "सर! 115 रुपए हो गए।"

"ठीक है। अब इनको तीन लोगों में बाँटो।"

"सर! 100 के खुले लेने पड़ेंगे क्योंकि 100 का एक नोट है और उसे तीन लोगों में नहीं बाँट पाऊँगा।"

"ठीक है।"

बच्चे ने सौ का एक नोट रखकर दस-दस के दस नोट उठा लिए। अब उसके पास दस के ग्यारह और एक-एक के पाँच नोट थे। उसने एक-एक करके तीनों को दस-दस के नोट बाँटना शुरू किया। तीनों बच्चों को 3-3 नोट मिले। जब उसने बाँट दिया तो मैंने उससे पूछा, "कितना बाँटा?"

"सर! 90 रुपए बाँट चुका हूँ।"

"कितने बचे हैं?"

"25 रुपए।"

"अच्छा! प्रत्येक को अभी कितना मिला है?"

"सर! दस के तीन नोट मतलब तीस रुपए।"

"अभी तुमने जो किया है उसे इस तरह से लिखते हैं :

3) 115 (30

−90

25

"अभी तुम्हारे पास कितने बचे हैं?"

"25 रुपए।"

"तो उसको भी बाँट दो।"

"पूरा नहीं बँटेगा क्योंकि दस के नोट तो सिर्फ़ 2 ही हैं और एक-एक के पाँच नोट हैं।"

"तो अब क्या करोगे?"

"सर, मुझे अब एक-एक के बीस नोट चाहिए।"

इतना कहकर बच्चे ने दस के दो नोट रखे और उसके बदले एक के बीस नोट उठा लिए। फिर एक-एक कर आठ नोट तीनों को बाँट दिए। अब उसके पास एक रुपए का सिर्फ़ एक नोट बचा।

"तुम्हारे पास कितने बचे थे?"

"25 रुपए।"

"अब तुमने कितने बाँट दिए?"

"24 रुपए।"

"प्रत्येक को कितना-कितना मिला?"

"सर! पहले हर एक को तीस-तीस रुपए मिले थे और अब आठ-आठ रुपए और मिले। कुल मिलाकर 38 रुपए प्रत्येक को मिले।

"अच्छा, यह बताओ, तुमने पूरा बाँट दिया या तुम्हारे पास भी कुछ बचा?"

"मेरे पास एक रुपया बचा है न!"

चित्र 6

"अब चलो देखते हैं इसे लिखा कैसे जाए।"

जब संक्रिया पर बच्चों की थोड़ी समझ बन गई तब मैंने उन्हें भाग की शब्दावली से भी परिचित कराया। मैंने उन्हें उदाहरण के साथ बताया कि जिस संख्या में भाग देते हैं वह भाज्य कहलाती है। यहाँ पर 115 रुपए भाज्य है। जिस संख्या से भाग देते हैं वो भाजक होती है, यहाँ पर 3 भाजक है। भाग देने के बाद जो हिस्सा सबको मिलता है वह भागफल होता है। यहाँ 38 भागफल है। अगर पूरा-पूरा भाग न जाए और कुछ शेष बच जाए तो उसे शेषफल कहते हैं। यहाँ शेषफल 1 है।

इसके बाद बच्चों को हल करने के लिए कुछ सवाल दिए गए जो उनकी गणित की पुस्तक से ही थे।

इस पूरी प्रक्रिया के बाद हमने बच्चों को कुछ कार्यपत्रक हल करने के लिए दिए। उन्हें बच्चों ने सही तरीक़े से हल किया।

संक्षेप में

हमारी राष्ट्रीय पाठ्यचर्या के दस्तावेज़ में कुछ बातें उन चुनौतियों की तरफ़ ध्यान दिलाती हैं जो गणित शिक्षण के दौरान सामने आती हैं :

अभी भी गणित के प्रति एक सहज माहौल बनाने में हम नाकामयाब रहे हैं। हम उनको बुद्धिमान मान लेते हैं जो कुछ सूत्र, संख्या या संक्रियाओं को रट लेते हैं और सवालों का तेज़ी से हल निकाल लेते हैं। साथ ही जो लोग इसको नहीं कर पाते, हम उनके ऊपर बुद्धू होने का ठप्पा भी लगा देते हैं।

गणित की प्रकृति भी एक महत्त्वपूर्ण रोल अदा करती है। इसकी प्रकृति में अवधारणाओं की अमूर्तता, सर्पिलाकार क्रमबद्धता, सार्वभौमिकता व निगमनात्मक तर्क शामिल हैं। कुछ लोगों को अमूर्त में चिन्तन करने में परेशानी होती है। बच्चों से शिक्षक कहता है कि दो और दो चार होते हैं, फिर कहता है कि तीन और एक भी चार होते हैं। उसके बाद कहता है कि एक और तीन को मिला दें तो चार होता है। इन सारी प्रक्रियाओं में कोई बच्चा अपने को असहज पाता है और उसे गणित से भय लगने लगता है।

सीखने-सिखाने के परम्परागत तरीक़ों से निजात नहीं मिल पा रही है और शिक्षक साथी ख़ुद को नए तरीक़ों से सुसज्जित नहीं कर पा रहे हैं। अमूमन किसी भी कार्यशाला के बाद उनकी कक्षा में जाकर देखने वाला कोई नहीं होता।

गणित सीखने में सामाजिक नज़रिया भी एक महत्त्वपूर्ण रोड़ा बन रहा है। कई लोगों का मानना है कि गणित सिर्फ़ बुद्धिमान लोगों के सीखने का विषयवस्तु है। इसके साथ ही लड़कियाँ गणित नहीं पढ़ सकतीं। इन सब भ्रान्तियों से हमें निकलना होगा।

गणित में आकलन का तरीक़ा भी बहुत कठोर और बेजान है। यह प्रक्रिया पर ही आधारित हो गया है। हमारे पास आकलन के नए तरीक़े नहीं हैं जिनसे हम बच्चे के अवधारणात्मक ज्ञान को जाँच सकें। सभी बच्चों का सीखने का स्तर अलग होता है, परन्तु पूरी शिक्षा व्यवस्था यह चाहती है कि सब एक बराबर सीखें जो मुमकिन नहीं है।

अगर हम गणित को अपनी पाठ्यचर्या के एक अभिन्न अंग की तरह देख रहे हैं तो यह हमारा कर्तव्य बनता है कि बच्चे ख़ुद को इससे जोड़कर देख सकें। उन्हें यह विषय न बोझिल लगे और न ही उबाऊ। वे इस विषय से भावनात्मक रूप से जुड़ पाएँ। ज़मीनी स्तर पर अपनी बुद्धि से गणितीय क्षमता को समझने की आवश्यकता है। बच्चों को अपनी रुचि को खोजने के लिए आज़ाद करना होगा और साथ ही वे अपने काम से, सीखने से, प्रेम करना सीखें, इस दिशा में भी कोशिशें करनी होंगी। यही नहीं, पाठ्यचर्या के स्तर पर भी काम करने की ज़रूरत है। गणित शिक्षण के व्यापक उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए इसका निर्माण करना होगा।

हालाँकि *एनसीएफ़ 2005* में गणित शिक्षण के व्यापक उद्देश्यों और सीखने-सिखाने के तरीक़ों के बारे में काफ़ी विस्तार से बात की गई है, लेकिन ज़मीनी स्तर पर *एनसीएफ़* में दिए सिद्धान्तों पर काम होता कम दिखाई देता है। मुझे लगता है, कम-से-कम सभी बच्चे आंकिक ज्ञान, आँकड़ों का निरूपण और उनका विश्लेषण कर पाएँ, ताकि कहीं ये ग़लत सन्देश न पहुँच जाए कि गणित बहुत कठिन है।

कक्षा में भी शिक्षकों को काफ़ी बदलाव करने पड़ेंगे। एक शिक्षक को अपनी कक्षा में सीखने-सिखाने के अनुकूल महत्त्वपूर्ण वातावरण का निर्माण करना पड़ेगा। कक्षा में भय की जगह बिलकुल भी नहीं होनी चाहिए, और जितनी भी प्रक्रियाएँ हों वो बच्चे के स्तर को बढ़ा ही सकें, ऐसा प्रयास हो।

अंकित शुक्ल 7 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र में सक्रिय हैं। इन्होंने लगभग 6 वर्ष अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्य किया। इनकी गणित शिक्षण, शिक्षक प्रशिक्षण और सहायक सामग्री निर्माण में विशेष रुचि है। वर्तमान में यह लैंग्वेज एण्ड लर्निंग फ़ाउण्डेशन, रायपुर, छत्तीसगढ़ में कार्यरत हैं।

सम्पर्क : ankit.shukla@languageandlearningfoundation.org

भाग सीखने के तरीक़े

पूजा

गणित की प्रारम्भिक अवधारणाओं में भाग की अवधारणा बच्चों के सामने कई मुश्किलें लेकर आती है। वे इसका अर्थ समझे बिना ही हल करने के चरणों को याद कर लेते हैं। परिणाम यह होता है कि परिस्थितियाँ बदलने पर वे सही ढंग से इसका उपयोग नहीं कर पाते। प्रस्तुत आलेख में लेखिका ने बच्चों के अनुभवों को आधार बनाकर उन्हें भाग की संक्रिया ख़ुद से करने देने के कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। बच्चे ख़ुद तय करते हैं कि उन्हें क्या करना है, और फिर अपने काम की गणितीय प्रस्तुति भी करते हैं। यह आलेख कक्षा में भाग पर कुछ अलग ढंग से काम करने का एक आयाम प्रस्तुत करता है। सं.

लगभग पाँच सालों से मैं प्राथमिक शिक्षा में कार्य कर रही हूँ। इसके तहत मुझे कई विद्यालयों में जाने का मौक़ा मिला। गणित विषय में मेरी पहले से ही काफ़ी रुचि रही है, जिसके फलस्वरूप गणित में काम करने का ज़्यादा मौक़ा मिला। साथ ही गणित की एनसीईआरटी की पुस्तकें भी मैं समय-समय पर पढ़ती रही। एक दिन कक्षा 3 और 4 की गणित की पुस्तकें पलट ही रही थी कि भाग के एक ख़ास तरीक़े पर नज़र पड़ी। इसमें भाग से जुड़े दो सन्दर्भों, 'बराबर बाँटने' और 'बराबर समूह बनाने', से जुड़े प्रश्नों के साथ ही इन सन्दर्भों से जुड़ती हुई एक विधि भी दी गई थी। यह विधि बाँटने के रोज़मर्रा के तरीक़ों से सीधे-सीधे मेल खाती थी। जैसे– 25 टॉफ़ियों को 5 बच्चों में बाँटने का तरीक़ा। हर बच्चे को पहले एक-एक टॉफ़ी दी जाए तो 5 टॉफ़ियाँ बँट जाएँगी और 20 रह जाएँगी। इसी तरीक़े से एक-एक करके टॉफ़ी और दी जाए। इस तरह से हर बच्चे को 5-5 टॉफ़ियाँ मिल जाएँगी। इस प्रक्रिया की मदद से भाग के एल्गोरिदम पर बच्चों के साथ काम करना मेरे लिए ज़्यादा चुनौतीपूर्ण रहा।

इत्तिफ़ाक़ से उन्हीं दिनों मुझे एक प्राथमिक विद्यालय में जाने का मौक़ा मिला। चूँकि लॉकडाउन के बाद, कुछ महीने पहले ही विद्यालय दोबारा खुले थे, अतः मेरी कक्षा में उस दिन कक्षा 3, 4 और 5 के बच्चे साथ-साथ बैठे थे। इस दौरान बुनियादी साक्षरता और संख्या ज्ञान (फ़ाउण्डेशनल लिटरेसी और न्यूमेरेसी) पर ज़्यादा काम चल रहा था। बच्चों से कुछ प्रारम्भिक बातचीत हुई। उन्हें संख्याओं व जोड़-घटाव की कितनी समझ थी, यह जानने के लिए कुछ अन्य बातचीत की गई और कुछ सवाल भी दिए गए। कक्षा 4 और 5 के अधिकतर बच्चे जोड़-घटाव से जुड़े सवाल कर पा रहे थे। कक्षा 3 के ज़्यादातर बच्चे इन सवालों को हल नहीं कर पाए तो थोड़ी बातचीत के बाद उन्हें जोड़-घटाव से जुड़े कुछ आसान सवाल दिए गए। कक्षा 3 के कुछ बच्चों और कक्षा 4 व 5 के बच्चों को गुणा-भाग से जुड़े कुछ अन्य सवाल भी दिए। बच्चों को ज़्यादा दिक्क़त भाग के एल्गोरिदम को समझने में आ रही थी जिसे चित्र 1 में दिखाया गया है।
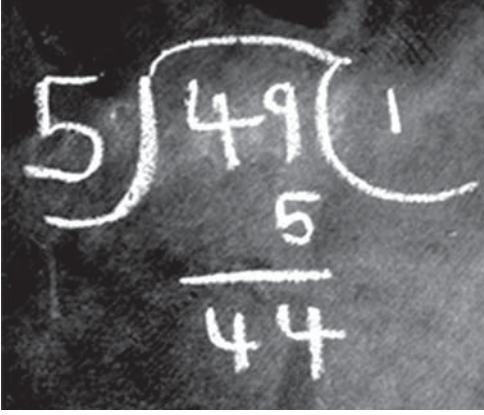
चित्र 1

इस सवाल को कुछ इस तरीक़े से रखा गया था :

"अगर 49 सिक्कों को 5 बच्चों में बराबर बाँटेंगे तो हर एक बच्चे को कितने सिक्के मिलेंगे और कितने सिक्के शेष बचेंगे जिन्हें बाँटा नहीं जा सकता?"

इसी प्रश्न के साथ भाग पर बातचीत शुरू हुई। यहाँ यह बात भी समझ में आ रही थी कि शुरुआत में छोटी संख्या ली जानी चाहिए जिसे आसानी से बाँटा जा सके। मसलन, 10 चॉकलेटों को 5 बच्चों में कैसे बराबर बाँटा जाए। शुरुआत की बातचीत बराबर बाँटने को लेकर ज़्यादा केन्द्रित थी। इसे सभी बच्चे बहुत अच्छे-से कर पा रहे थे। बच्चे एक-एक कर चॉकलेट बाँट रहे थे। जैसे– 10 चॉकलेटों को 5 बच्चों में बाँटने के लिए पहले पाँचों बच्चों को एक-एक चॉकलेट दी फिर पाँच बच गईं, तो फिर से पाँचों बच्चों को एक-एक चॉकलेट दे दी। ऐसा करते हुए हर बच्चे को 2-2 चॉकलेट मिलीं। धीरे-धीरे कुछ प्रश्न बच्चों की तरफ़ से भी आने लगे, जैसे–

"15 केले 4 लोगों में कैसे बाँटे जाएँ?"

"20 पेंसिलें 10 बच्चों में कैसे बाँटी जाएँ?"

ज़्यादातर सवाल बराबर बाँटने से जुड़े ही आ रहे थे, तो मैं भी अपने सवाल इनमें जोड़ रही थी :

"11 फूल हैं और इनसे माला बनानी हैं। एक माला में पाँच ही फूल लगाने हैं तो कितनी मालाएँ बन जाएँगी?"

इन प्रश्नों को बोर्ड पर भी लिखा गया। अब बारी थी इन्हें हल करने की। बच्चों ने जो सवाल बनाए थे उनमें से पहले सवाल से शुरुआत की गई।

कुछ बच्चे अपनी कॉपियों पर एक-एक कर बाँट भी रहे थे, लेकिन पाँचवीं कक्षा के कुछ बच्चे ऐसे थे जो 4 का पहाड़ा पढ़कर कुछ इस तरीक़े से सवाल हल कर रहे थे :

चार तियाँ बारा ($4 \times 3 = 12$)

तो चारों लोगों को तीन-तीन केले मिलेंगे और तीन शेष रह जाएँगे। इसी सवाल को एक बच्चा सूरज, बोर्ड पर भी लिख रहा था :

$4 + 4 + 4 = 12$ और तीन बच गए।

सूरज का यह तरीक़ा चार-चार केलों के बराबर समूह बनाने की प्रक्रिया को प्रदर्शित कर रहा था।

मैं बोर्ड के दूसरी तरफ़ चित्र 2 के तरीक़े से इस सवाल को लिख रही थी।
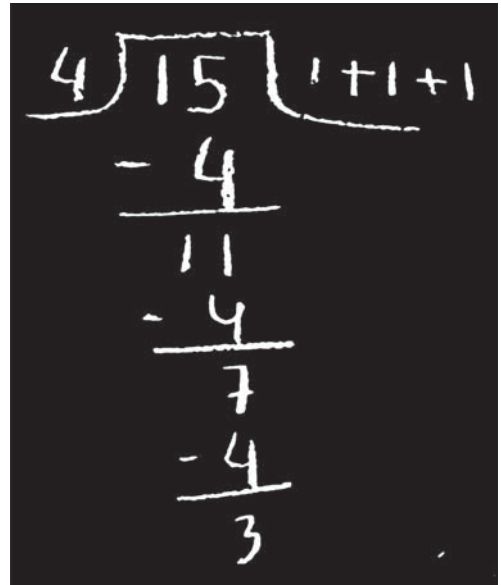
चित्र 2

पाँचवीं के आर्यन ने जब इस सवाल को ग़ौर से देखा तो उसकी प्रतिक्रिया कुछ इस तरह थी :

"यह लग तो सही रहा है पर अजीब है।"

वह बोर्ड पर आया और चित्र 3 की तरह इसी सवाल को किया।
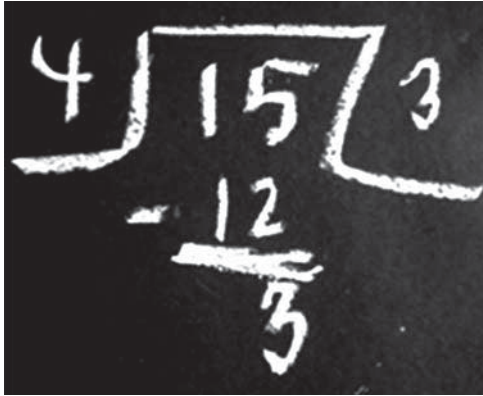
चित्र 3

कक्षा 3 के बच्चे चित्र 2 के तरीक़े को आसानी से स्वीकार कर रहे थे। इसका एक कारण यह भी था कि ये बच्चे लॉकडाउन से पहले कक्षा एक में थे जिसकी वजह से मानक तरीक़ों पर ज़्यादा काम नहीं हुआ था। मेरे द्वारा अपनाया तरीक़ा उनके लिए आसान था। इसके विपरीत, कक्षा पाँच के बच्चे कलन जानते थे, और ऐसा लगता था कि वे उससे बँधकर जड़ हो गए थे। उनको अवधारणात्मक समझ नहीं थी, पर नए ढंग से सोचने की तैयारी भी नहीं थी।

यहाँ मुझे एक शिक्षिका द्वारा कही गई बात याद आ रही है। जब उनसे चित्र 1 पर बातचीत की जा रही थी तो उनका कहना था, "यह तरीक़ा बच्चों को समझ में नहीं आएगा और वे कन्फ़्यूज़ भी होंगे। भले ही यह तरीक़ा अपेक्षाकृत ज़्यादा सरल और कम अमूर्त है फिर भी बच्चे मानक तरीक़े को ही आसान मानते हैं।"

किन्तु यह स्पष्ट है कि अवधारणात्मक समझ बनाने में सवालों को अलग-अलग ढंग से करने में मदद मिलती है। सवालों को अलग-अलग ढंग से करने पर एल्गोरिदम के विभिन्न चरणों को समझने में मदद मिलती है।

शायद इसी वजह से बार-बार कहा जाता है कि बच्चों को कोई विधि या नियम सीधे बता देने से बेहतर है उन्हें तर्कों के माध्यम से नियम तक ख़ुद पहुँचने के मौक़े दिए जाएँ।

लेकिन गणित में सही तरीक़े का आतंक ऐसा है कि बच्चे मेरे द्वारा बताए तरीक़े को मान ही नहीं रहे थे। जब मैंने बच्चों को कक्षा 5 की किताब में यह अलग तरीका दिखाया तब उन्हें कुछ विश्वास हुआ कि भाग का सवाल कुछ फ़र्क़ तरीक़े से भी किया जा सकता है। हालाँकि इसके कुछ पहलू परेशान करने वाले भी हैं, जैसे–

कक्षा 4 की रिधिमा ने दोनों ही तरीक़ों को सही माना, पर उसका एक सवाल भी था :

"पहला वाला तरीक़ा ज़्यादा आसान है पर जैसे 50 को 5 से भाग करेंगे तो लम्बा हो जाएगा।"

इस सवाल पर अभी चर्चा नहीं हो सकती किन्तु यह सवाल ही शायद एक ही कलन के इस्तेमाल की बाध्यता बन जाता है।

भाग : कई तरीक़ों से बँटवारा

कक्षा में नीचे दिए सवाल पर काफ़ी चर्चा हुई।

"50 पतंगों को 5 बच्चों में कैसे बाँटा जाए या 50 को 5 से कैसे भाग दिया जाए?"

"सबके अपने-अपने तरीक़े हो सकते हैं।"

कक्षा 3 की काव्या ने कुछ इस तरीक़े से इस सवाल को किया :
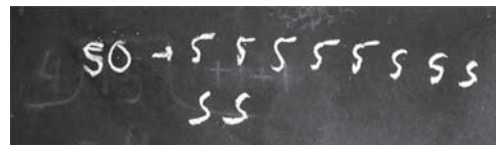
चित्र 4

उसने कहा, "5-10 बार आया है।"

काव्या ने किया तो था पर वह थोड़ा कन्फ़्यूज़ हो गई थी कि उत्तर क्या है। मैंने सवाल पर फिर से ज़ोर दिया :
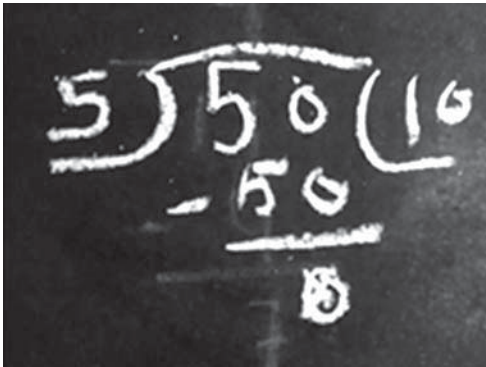
"50 तो पतंगें हैं और 5 बच्चे हैं। पाँचों बच्चों को बराबर पतंगें बाँटेंगे तो एक बच्चे को कितनी पतंगें मिलेंगी?"

काव्या ने कुछ सोचने के बाद कहा, "पाँचों को पहले एक-एक पतंग देंगे, फिर दो-दो पतंगें, फिर तीन-तीन... तो ऐसे में 10 पतंगें मिल जाएँगी।"

काव्या का यह जवाब उसके पहले वाले जवाब से अलग था। वह इस परिणाम तक कैसे पहुँची, यह मुझे बहुत स्पष्ट नहीं हो पाया। ऐसे मौक़ों पर मुझे लगता है कि बच्चों को ज़्यादा अवसर दिए जाने चाहिए ताकि उनके भीतर चल रही विचार प्रक्रिया को समझा जा सके।
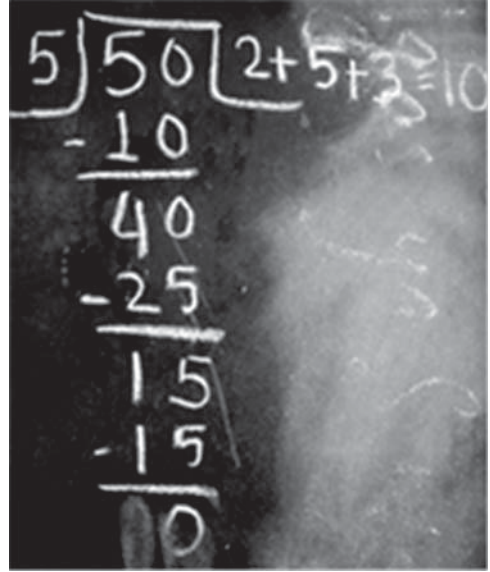
पर अभी आगे बढ़ा जाए, यह सोचकर काव्या का जवाब सबके सामने रखा गया। कक्षा 4 के रितिक ने इसपर कहा, "पाँच दसाँकी 50, तो हर किसी को 10-10 पतंगें मिल जाएँगी।"

इस तरीक़े पर सबने हामी भर दी। उसने इसे चित्र 5 के तरीक़े से हल किया।

चित्र 5

मैं ख़ुद भी बोर्ड पर 'अलग' तरीक़े (चित्र 6) से हल करने लगी :

चित्र 6

"50 पतंगों को 5 बच्चों में बाँटेंगे तो शुरुआत में कितनी पतंगें बाँटी जाएँ?"

"एक-एक बाँटें?"

"नहीं, दो-दो बाँटते हैं, 10 पतंगें बँट जाएँगी।"

"पाँच दूनी दस पतंगें बँट गईं। अब 40 पतंगें बची हैं।"

"अब कितनी-कितनी बाँटें?"

"पाँच-पाँच, पाँच पंजे पच्चीस पतंगें और बँट गईं।"

"अब कितनी बच गईं?"

थोड़ा सोचने के बाद उत्तर आया, "15 पतंगें बच गईं। पाँच तियाँ पन्द्रह, तो अब तीन-तीन पतंगें फिर से बाँट दो।"

"अब कितनी पतंगें बँट गईं?"

"सब पतंगें बँट गईं।"

मैंने फिर से ज़ोर देते हुए पूछा, ''क्या किसी दूसरे तरीक़े से इसे किया जा सकता है?''

कक्षा 5 की साक्षी का तरीक़ा ऐसा था :

उसने कहा, ''पहले पाँचों को पाँच-पाँच पतंगें दीं तो 25 पतंगें बँट गईं। ऐसे ही फिर से 5-5 पतंगें सबको दे दीं। 25 पतंगें फिर से बँट गईं।''
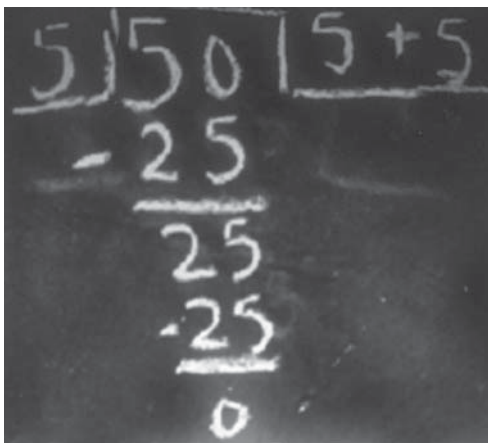
चित्र 7

साक्षी के जवाब को फिर से सबके सामने दोहराया गया। इसपर सबकी राय भी माँगी गई। अबकी बार मानक तरीक़े से थोड़ा अलग नए तरीक़े को भी बच्चे अपना रहे थे। यदि यह तरीक़ा उसी विद्यालय के किसी शिक्षक द्वारा बताया जाता तो बच्चों द्वारा शायद ज़्यादा जल्दी अपनाया जाता, पर अकसर देखा गया है कि विद्यालय के शिक्षक-शिक्षिकाओं के अलावा यदि कोई बाहरी व्यक्ति कुछ नए तरीक़े सुझाता है तो बच्चे उस विचार को जल्दी नहीं अपना पाते हैं।

बच्चे जब कुछ वस्तुओं को बराबर बाँट रहे होते हैं तो वे इसी तरीक़े (चित्र 2, 6, 7) को अपनाते हैं। अपनी सहूलियत के अनुसार चाहे वे पहली बार में एक-एक बाँटें, दो-दो बाँटें या पाँच-पाँच। यही इस तरीक़े की ख़ूबसूरती भी है कि हर बच्चा अपने तरीक़े से बाँट सकता है। इस प्रक्रिया के दौरान बच्चे अपने तरीक़े से अनुमान भी लगाते हैं कि पहली बारी में ज़्यादा-से-ज़्यादा कितना बाँटें ताकि प्रक्रिया छोटी हो जाए।

यह पूरी प्रक्रिया भाग के अर्थ व सन्दर्भ में उपयोग को समझने में मदद करती है। इसके विपरीत कलन पर सीधे जाने का एक ख़तरा यह भी हो जाता है कि बच्चे इस प्रक्रिया को चरणबद्ध ढंग से याद कर लेते हैं। ऐसा इसलिए क्योंकि वे रोज़मर्रा में प्रयोग किए जाने वाले मनगणित से इसका जुड़ाव नहीं देख पाते हैं, और इसलिए भी क्योंकि उनके ख़ुद के स्वतंत्र तरीक़ों को कक्षा-कक्ष में जगह नहीं मिल पाती है।

जब भाग की प्रक्रिया को बच्चों के परिवेश के सन्दर्भों से जोड़ा जाता है तो बच्चे बार-बार घटाने की इस प्रक्रिया से जुड़ाव महसूस करते हैं। वे कक्षा में हो रही चर्चा का सम्बन्ध अपने दैनिक जीवन में देख पाते हैं। अलग-अलग तरीक़ों से बाँटने के ख़ूब सारे मौक़े मिलने के बाद हो सकता है कभी वे यह भी महसूस करें कि हर बार इकाई को ही पहले क्यों बाँटा जाए? क्या कभी बाँटने की शुरुआत दहाई, सैकड़े आदि से भी की जा सकती है? तब शायद बच्चे ख़ुद ही तय कर लें कि कौन-सा तरीक़ा अभी के लिए सरल है और कौन-सा तरीक़ा बड़ी संख्याओं के भाग करते वक़्त काम आएगा।

पूजा ने हेमवती नंदन बहुगुणा गढ़वाल विश्वविद्यालय, श्रीनगर से गणित में स्नातकोत्तर की पढ़ाई की है। उनकी इस विषय में ख़ास रुचि है। वे पाँच वर्षों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में गणित शिक्षकों और बच्चों के साथ गणित विषय पर काम कर रही हैं।
सम्पर्क : pooja.dumaga@azimpremjifoundation.org

खुले प्रश्नों के खुले जवाब

अलका तिवारी

बच्चों में चिन्तन प्रक्रिया शुरू करने, तर्क और विश्लेषण का कौशल विकसित करने के लिए भाषा एक मज़बूत औज़ार की तरह इस्तेमाल होती है। अगर भाषा के इस कमाल के लिए कहानी, कविता, घटनाएँ, बच्चों के निजी अनुभव जैसे समुचित सन्दर्भ हों तो यह प्रक्रिया और भी सजीव हो जाती है। लेखिका ने बच्चों के साथ पाठ्यपुस्तक की कुछ कहानियाँ और कुछ पाठ्येतर सामग्री लेकर उनसे संवाद का अपना कक्षा अनुभव प्रस्तुत किया है। सं.

कई साथियों के साथ लगातार संवाद, कुछ ख़ास तरह के अध्ययन और बच्चों के अवलोकन से मन में भाषा सीखने की सैद्धान्तिक प्रक्रिया को लेकर एक स्वीकार्यता बनी। यह स्वीकार्यता कि पढ़ना-लिखना सीखने की प्रक्रिया बच्चों के लिए मज़ेदार और अर्थपूर्ण होनी ही चाहिए। बच्चे पठन के दौरान आई बातों को अपने अनुभवों से जोड़कर देख पाएँ और उनके बारे में सोच-विचार कर पाएँ। साथ ही पठन की प्रक्रिया बच्चों के मन-मस्तिष्क में लिखे हुए शब्द-चित्रों के कुछ अर्थ गढ़ पाने में इस रूप में मददगार साबित हो कि बच्चे लिखे हुए शब्दों से अपने पूर्व अनुभवों को जोड़ते हुए कुछ नए विचार बना पाएँ। इसी के साथ यह भी समझी कि बच्चों के साथ लिखे हुए सन्दर्भों पर थोड़ा ठहरकर चर्चा की जाए तो भाषा सीखने की प्रक्रिया बच्चों में चिन्तन को शुरू करने में मददगार साबित होती है। ऐसे सतत अवसर बच्चों को रचनात्मक सोचने की दिशा में ले जा पाने में भी भूमिका अदा करते से नज़र आते हैं। हालाँकि यह सब बहुत धैर्य, खुलेपन और सजग होकर बच्चों के साथ काम की माँग करता है।

पिछले दिनों बच्चों के साथ कक्षा में भाषा सीखने-सिखाने के कार्य से जुड़कर इस विचार को और भी क़रीब से महसूस कर पाने का मौक़ा मिला। इस लेख में कक्षा 2, 3, 4 के बच्चों के साथ कुछ कहानियों और वर्कशीट (क्रियात्मक चित्रों) पर किए कामों के अनुभवों के कुछ अंश साझा कर रही हूँ।

टीला, डाकू और चोर

कक्षा 2 में ‘चिड़िया और डाकू’ कहानी सुनाने के बाद जब बच्चों से चर्चा की शुरुआत की गई तो उनके विचार इस प्रकार थे :

आशीष ने टीले के बारे में बताया, “जो ऊँची जगह होती है, उसे टीला कहते हैं। उसपर चढ़कर सारा गाँव साफ़-साफ़ दिखता है लेकिन टीला पहाड़ से कम ऊँचा होता है!”

इसी कहानी में आए ‘डाकू’ शब्द पर बातचीत हुई तो दिलख़ुश ने एक कहानी के रूप में अपना अनुभव सुनाते हुए बताया कि उसने सुना है उसकी दादी के गाँव में डाकू आए थे, उनके पास बन्दूकें थीं। पहले गोलियाँ चलाकर उन्होंने सबको डराया फिर कई घरों से सामान लूटकर चले गए।

राजवीर ने कहा, “दीदी, मेरे पापा मेले में गए थे। किसी ने उनकी जेब काट ली थी और सारे पैसे ले लिए।” इसपर मैंने यह सवाल समूह के सामने रखा कि राजवीर ने जो बात बताई, उन लोगों को हम क्या कहेंगे? सभी बच्चे एक साथ बोल पड़े, “दीदी चोर!”

मैंने पूछा, “हम किसके बारे में बात कर रहे थे?”, “डाकुओं के बारे में।” फिर मैंने बच्चों से डाकू और चोर के बारे में कुछ और जानना चाहा तो विजय ने बताया, “दीदी, चोर तो चुपके से चीज़ें चुराते हैं, पीछे से, कि हमें पता ही नहीं चलता। पर डाकू तो सामने आकर सबकुछ करते हैं!” कमलेश ने जोड़ा, “डाकू तौलिए से हमेशा अपना मुँह ढँके रहते हैं, ताकि कोई उन्हें जल्दी से पहचान न पाए।” पायल ने कहा, “दीदी, चोर तो बस सामान ही चुराते हैं, पर डाकुओं के पास हथियार भी होते हैं और वो तो लोगों को मार भी देते हैं!” अजय ने बताया, “दीदी, सर कहते हैं हमारी कक्षा में कुछ कामचोर भी हैं!” सब हँस पड़े। इसपर मैंने बच्चों से पूछा, “चोर और कामचोर अलग-अलग बात हैं क्या?” विशाल बोला, “जो अपना काम न करे वो कामचोर।” बात पूरी करते हुए गायत्री बोली, “कामचोर अपना नुक़सान करता है और चोर दूसरों का!”

कौवा, साँप और सोने का हार

कक्षा 3 में ही, *पंचतंत्र* की कहानी ‘कौवा और सोने का हार’ का वीडियो बच्चों को दिखाया। वीडियो का कुछ हिस्सा देखने के बाद प्रश्नों के माध्यम से इस कहानी के घटनाक्रम के बारे में बच्चों से जानने का प्रयास किया गया। “कौवा हार लेकर कहाँ जा रहा होगा?”, यह पूछने पर बच्चों की प्रतिक्रिया कुछ इस तरह रही :

धनराज : “अपने बच्चों के लिए।”

अजय : “कौवी के लिए।”

कमलेश : “बेचने के लिए।”

सना : “खेलने के लिए।”

राधा : “घर में सजाने के लिए।”

तनवीर : “अपने दोस्त को देने के लिए।”

विशाल : “इसके बदले में खाने की कुछ चीज़ लाने के लिए।”

कौवा और सोने का हार

कौवी ने अण्डे दिए। कौवे के अण्डों को उसी पेड़ के नीचे बने बिल में रहने वाले साँप ने खा लिया। इससे कौवे का परिवार बहुत दुखी हुआ। कौवे ने उस साँप से छुटकारा पाने के लिए एक उपाय सोचा। तालाब पर रानी रोज़ नहाने आती थी। एक दिन कौवा उस रानी का हार अपनी चोंच में लेकर धीरे-धीरे उड़ने लगा। उसे पकड़ने के लिए रानी के सिपाही पीछे-पीछे भागे। कौवे ने हार लाकर साँप के बिल में डाल दिया। सिपाहियों ने साँप को मारकर हार बिल से बाहर निकाल लिया।

कोमल अभी तक सोच रही थी कि हार तो कौवे के किसी काम का नहीं है, पर इससे कौवा कुछ अलग करने वाला है! इसपर पायल ने पूछा, “कौवा चुपके से भी तो हार ले जा सकता था, तो सिपाही उसे मारने के लिए उसके पीछे नहीं आते।” पायल की बात सुनकर दिलख़ुश ने कहा, “दीदी, कौवा पागल होता है।” मैंने जानना चाहा कि उन्हें ऐसा क्यों लगता है। इसपर धनराज बोला, “तभी दीदी वो गन्दी चीज़ें ही खाता है, गोबर में चोंच घुसाता रहता है।” इस बातचीत से मैं अन्दाज़ा लगा पा रही थी कि उनका मतलब था, कौवा बेवकूफ़ होता है! तभी विजय बोल पड़ा।

लेकिन कहानी का पूरा वीडियो देखने के बाद कौवे के हार लाने के बारे में आशीष, कोमल, विशाल आदि बच्चों ने मिलकर यह

प्रतिक्रिया दी कि कौवा साँप को मारने के लिए हार लेने गया था। उसने हार लाकर साँप के बिल में डाल दिया और सिपाही ने हार लेने के लिए साँप को मार दिया। इससे कौवे की परेशानी दूर हो गई। अब वह आराम से रह सकता था। किरन ने पायल के सवाल पर प्रतिक्रिया देते हुए कहा, "अगर कौवा सिपाहियों के सामने हार लेकर नहीं उड़ता, तो वे साँप के बिल तक कैसे पहुँचते? और फिर साँप कैसे मरता? साँप नहीं मरता तो कौवे को हार उठाकर लाने से क्या फ़ायदा होता!" मनीष ने कहा कि इस कहानी में उसे साँप बहुत बुरा लगा, क्योंकि उसने कौवे के परिवार को बहुत सताया था। राधा ने कहा कि इस कहानी में उसे कौवे का व्यवहार अच्छा लगा क्योंकि उसने अपने दुख को दूर करने के लिए इतना सोचा! तभी तो ये तरीक़ा ढूँढ़ पाया, नहीं तो साँप कभी मरता! इसपर अमन का कहना था कि साँप कौवे के अण्डे नहीं खाता तो कौवा कभी साँप को मारने की नहीं सोचता और फिर उनके परिवार मज़े से दोस्ती के साथ रहते और दोनों मिलकर खाने के लिए कुछ ढूँढ़ने जाते। इस बात को आगे बढ़ाते हुए तनवीर ने कहा, "अगर कौवा दिमाग़ लगाता तो वो पेड़ की और ऊँची डाली पर जाकर घोंसला बना लेता!" इसपर सना ने कहा, "साँप तो वहाँ भी आ जाता फिर तो उसे हमेशा के लिए अपना घोंसला छोड़कर कहीं और जाना पड़ता, घोंसला बनाने के लिए अच्छी जगह ढूँढ़नी पड़ती, और फिर से मेहनत करनी पड़ती अपना नया घर बनाने के लिए। घर बनाना इतना आसान थोड़े न होता है!" मैंने बच्चों के बीच एक सवाल रखा कि आप साँप के साथ क्या करते? इसपर अजय ने कहा, "मैं तो उसे पत्थर मार-मार कर मार डालता!" आशीष कुछ सोचकर बोला कि वह साँप के बिल के पास बहुत सारी आग लगा देता जिससे साँप डरकर बिल छोड़ भाग जाता!

बिल्ली, चील और चिड़ियों का झुण्ड

कक्षा 4 के बच्चों को *पंचतंत्र* की कहानी 'चालाक बिल्ली' का वीडियो दिखाकर जब उनसे इस कहानी पर अपनी राय ज़ाहिर करने को कहा गया तो उन्होंने अपनी राय कुछ यूँ व्यक्त की :

- मीनाक्षी : "दीदी, मुझे ये कहानी अच्छी नहीं लगी क्योंकि इस कहानी में चील को उस अपराध की सज़ा भुगतनी पड़ी, जिसे करने के बारे में वह कभी सोच भी नहीं सकती थी। और चिड़ियों के समूह में से, किसी भी चिड़िया ने चील को सज़ा देने से पहले एक बार भी ये ज़रूरी नहीं समझा कि चील से

चालाक बिल्ली

जंगल में चिड़ियों का एक झुण्ड रहता था। उसी झुण्ड के पास एक बूढ़ी चील रहती थी। चील अपनी अवस्था के कारण शिकार नहीं कर पाती थी, इसलिए भूखी रह जाती थी। चिड़ियों को अनाज लेने के लिए जंगल से दूर जाना पड़ता था। इसलिए चिड़ियों के झुण्ड ने अपने भोजन में से थोड़ा-थोड़ा हिस्सा चील को देकर उसकी मदद करने का सोचा। बदले में चील ने भी सोचा कि चिड़ियाँ जब दाना लेने जाएँगी तो वह उन सबके बच्चों की देखभाल करेगी। तभी एक दिन एक बिल्ली आती है, और अपनी चिकनी-चुपड़ी बातों से चील को भरोसा दिलाती है कि वह एक शाकाहारी बिल्ली है और उससे दोस्ती करना चाहती है। पहले चील उसपर थोड़ा सन्देह करती है, पर फिर उसे बिल्ली की बातों पर यक़ीन हो जाता है। इसका फ़ायदा उठाकर बिल्ली धीरे-धीरे कई सारे बच्चे चट कर जाती है। जंगल में एक जगह चिड़ियों को उन बच्चों की हड्डियाँ दिखती हैं, चिड़ियों का सारा झुण्ड ग़ुस्से में आकर उस चील को मार डालता है।

सही कारण जानने की कोशिश की जाए या उसे एक बार अपनी बात कहने का मौक़ा दिया जाए। उसकी बात सुने बिना ही उसे ऐसे मार दिया। ये भी नहीं सोचा कि वह चील पिछले कितने समय से उन सभी के बच्चों की देखभाल कितने ध्यान से कर रही थी, और पहले तो उनके बच्चों को कभी कोई नुक़सान नहीं पहुँचा था! उसके व्यवहार के बारे में विचार किए बिना, कारण जाने बिना ही उसे सज़ा दे दी गई। ये तो ठीक नहीं था!"

- कक्षा 3 की निशा : "दीदी, हमें बिल्ली वैसे तो बुरी ही लगी, क्योंकि इतने छोटे बच्चों को भी चट कर गई। वो तो कितने मासूम थे! पर जंगल में और कुछ भी तो नहीं था बिल्ली के खाने के लिए। घरों में भी उसे दूध या रोटी कुछ भी नहीं मिलता था खाने के लिए, और घास तो उसे अच्छी नहीं लगती होगी। तो उसके पास कोई और रास्ता भी तो नहीं था!" और यह कहते-कहते वह उदास भी होने लगती है।

- वरुण : "इस कहानी में चतुराई देखी जाए तो बिल्ली ने सब जगह ख़ूब दिमाग़ का इस्तेमाल किया, लेकिन उसने अपनी चालाकी से चिड़िया के बच्चों को खा लिया, जिसका ज़िम्मेदार चील को समझा गया और बिल्ली के हिस्से की सज़ा उसे मिली। और चिड़ियों ने चील की बात सुने बिना ही उसे सज़ा दे डाली। उनका ये निर्णय ग़लत था क्योंकि सही निर्णय तो तभी होता, जब कम-से-कम एक बार चिड़ियाँ चील से अपने बच्चों को मारने की वजह तो पूछ लेतीं।"

- शुभम : "बिल्ली बहुत चालाक तो थी! उसने बच्चों को मारा, इसलिए वह हमें बुरी भी लगती है। लेकिन उसे भी तो अपना पेट भरना था, इसलिए अपनी भूख मिटाने के लिए उसे ये सब करना पड़ा। चील तो बिल्ली के बारे में पहले से ही जानती थी कि उसका व्यवहार कैसा था, फिर उसपर भरोसा करने से पहले ये तो सोचना चाहिए था कि किसी भी इंसान का व्यवहार एकदम से कैसे बदल सकता है! इस बात के लिए उसे सज़ा मिली। और चिड़ियों ने बिना समझदारी के ग़ुस्से में आकर निर्णय कर दिया। ग़ुस्से में तो कभी कोई भी निर्णय ठीक नहीं हो सकता!"

- चेतना : "मुझे चील का व्यवहार बहुत अच्छा लगा क्योंकि वह कितनी ज़िम्मेदारी से सभी चिड़ियों के बच्चों की देखभाल करती थी, तभी तो चिड़ियाँ अपना खाना ढूँढ़ने बेफ़िक्र होकर जा पाती थीं। बदले में सभी चिड़ियों ने अपने खाने में से थोड़ा-थोड़ा हिस्सा चील को देकर उसकी मदद की थी। इससे दोनों को एक दूसरे से बराबर मदद मिल रही थी।"

- प्रिया : "दीदी, चील बहुत अच्छी थी। वह दिनभर बच्चों का ध्यान रखती और कहीं भी नहीं जाती थी। उसका मन करता तो वो सो भी सकती थी, चिड़ियाँ थोड़े न आतीं उसे देखने के लिए। पर उसने अपना काम पूरी ईमानदारी से किया। बिल्ली को भूख लगी थी, इसलिए उसने बच्चों को खाया। लेकिन अपनी भूख मिटाने के लिए उसने चील से बार-बार कितना झूठ बोला, उसे धोखा दिया, यह बहुत बुरा लगा। वह सीधे भी तो चील से कह सकती थी कि मुझे कुछ बच्चे दे दो खाने के लिए। पर पता नहीं तब चील उसे बच्चे देती या नहीं। शायद वो भूखी रह जाती।"

- अर्चना : "चिड़ियों ने चील को देखकर अपने-अपने खाने में से थोड़ा-थोड़ा

हिस्सा देकर उसकी मदद की। चूँकि वह इतनी बूढ़ी हो गई थी कि अपने लिए शिकार करके नहीं ला सकती थी। फ़्री में खाना खाने की बजाय चील ने उनके बच्चों की देखभाल करने में मदद की, तभी तो चिड़ियाँ खाना ला पाती थीं। लेकिन बिल्ली किसी मरे हुए जानवर को खाकर भी तो अपना पेट भर सकती थी या चील से सच भी तो बोल सकती थी कि मैं भूखी हूँ। शायद चील उसे खाना ढूँढ़ने में मदद करती, या चिड़ियाँ भी उसे अपने खाने में से कुछ हिस्सा दे सकती थीं।"

यह सब बातचीत करने के बाद सभी बच्चों ने कहानी को अपने शब्दों में लिखने का काम भी किया। सभी बच्चों ने लिखने की कोशिश की और वे काफ़ी हद तक लिख भी पाए।

समूह में पढ़ना

सभी कक्षाओं में बच्चे समूहों में किताबों को पढ़ते हैं। समूह में पढ़ने के लिए किताबों का चयन वे ख़ुद ही करते हैं। कई बार समूह में पढ़ने की प्रक्रिया भी वे तय करते हैं– जैसे कभी एक समूह में कुछ बच्चे व्यक्तिगत रूप से भी पढ़ते हैं, जबकि उसी समूह के अन्य सदस्य किसी एक किताब को पढ़ रहे होते हैं। ऐसे ही एक समूह पठन के दौरान, अपनी पसन्द की पुस्तक पढ़ने के बाद शुभम ने बताया कि वो

इस कहानी को सुनाना चाहता है और इसके बारे में कुछ बताना चाहता है क्योंकि यह कहानी उसे थोड़ी ख़ास लगी है! ख़ैर, कहानी सुनाने के बाद शुभम ने अपनी बात को जिस शैली में धारा प्रवाह के साथ साझा किया वह मुझे भी कुछ मायनों में ख़ास लगा।

- शुभम : "इस कहानी में चोट लगे तोते की देखभाल माधव और काजल ने बड़ी ख़ास तरह से की। वैसे तो हम सभी को जीवों की देखभाल करनी ही चाहिए, पर काजल और माधव ने इस बात का बिलकुल ध्यान रखा कि तोता उनसे डर रहा है, और डर के मारे भागने की वजह से उसे और ज़्यादा चोट लग सकती है। इसलिए उन्होंने इस बात का पूरा ध्यान रखा कि तोता फिर से कोई डर महसूस न करे। वे चुपके से तोते की ज़रूरत की चीज़ें रखने के लिए उसके पास जाते, और छुपकर तोते को देखते रहते ताकि ज़रूरत पड़ने पर उसकी मदद कर पाएँ। ठीक होने और कई दिनों तक साथ रहने के कारण वे तोते से प्यार करने लगे थे। पर शायद वे उसे सच

चित्र देखकर सोचो और लिखो -

में प्यार कर पाए थे, तभी तो ये महसूस कर रहे थे कि उस तोते के लिए सबसे सही जगह जंगल है। क्योंकि वहीं, वह अपनी मर्ज़ी का जीवन जी सकेगा, और पूरी तरह ख़ुश महसूस करेगा, इसलिए वे उसे जंगल में छोड़ने की बात सोच पाए। लेकिन हम होते तो ऐसे सोचते कि चलो इसे पाल लेते हैं, हम अपना फ़ायदा देखते। लेकिन पिंजरे में कोई भी जीव कैसे ख़ुश रह सकता है, चाहे हम उसे कितना ही प्यार करें, आज़ादी तो सबको चाहिए न! शायद माधव और काजल को यह बात पहले से पता थी...'' अपनी बात पूरी करके वह लम्बी साँस लेता है और उसके चेहरे पर आत्मविश्वास के साथ मुस्कुराहट तैर जाती है...

बच्चों के अपने हाइकु

कक्षा 3 के साथ इसी तरह एक दिन बच्चों से चित्र दिखाकर बातचीत की तो बच्चों ने चित्रों पर अपने विचार साझा किए। फिर उन्हें *दूध-जलेबी जग्गग्गा* किताब से कुछ कविताएँ दीं, इन कविताओं को पढ़ने के बाद बच्चों ने इसपर अपने अनुभव सुनाए और कहा, ''दीदी, ये बातें

तो एक छोटी कविता जैसी लगती हैं!'' बातचीत और पठन के फलस्वरूप वे यह महसूस कर पा रहे थे कि चित्रों पर कही गई बात किसी वाक्य के रूप में ही थी, लेकिन उनमें कोई लय भी है। उन्होंने चित्रों पर लिखी पंक्तियों को पढ़ा

और बताया कि इन पंक्तियों को लिखने वाले ने काफ़ी सोचा होगा इस चित्र के बारे में! ऐसी कोशिश स्वयं बताते समय उन्होंने नहीं की थी। बातचीत के बाद बच्चों से सहमति लेते हुए उन्हें कुछ चित्र बने हुए कार्यपत्रक दिए गए व कहा गया कि वे भी उन चित्रों पर कुछ सोचकर लिखने की कोशिश कर सकते हैं। चित्रों पर बच्चों की प्रतिक्रियाएँ कुछ इस तरह देखने को मिलीं :

- प्रिया : ''मूँछें हैं इसकी मतवाली, फिर भी हमसे डरती है!''
- अजय : ''चूज़ा और बकरी में हुई लड़ाई, लोहे से बनती है काली कढ़ाई!''
- शुभम : ''करता हूँ मैं भाऊँ-भाऊँ, फिर भी दिनभर मार खाऊँ!''
- कुलदीप : ''बॉल ज़ोर से आया, मैंने शॉट लगाया।''
- महेन्द्र :

''हूँ मैं एक प्यारी-सी बिल्ली, है मुझे फूलों से प्यार

हूँ मैं एक छोटी-सी गुड़िया, है मुझे खिलौनों से प्यार

हूँ मैं एक नन्ही-सी बच्ची, है मुझे साइकिल से प्यार

हूँ मैं एक छोटी-सी मछली, है मुझे समुद्र से प्यार

हूँ मैं एक ख़रगोश, है मुझे गाजर से प्यार

मैं हूँ एक गिलहरी, है मुझे अपने बच्चे से प्यार।"

कक्षा प्रक्रियाएँ

बच्चों के साथ काम की प्रक्रिया की बात की जाए तो काम के उद्देश्य व बच्चों की आवश्यकतानुसार बच्चे समूह व उपसमूह दोनों ही प्रक्रियाओं के तहत काम करते हैं। पाठ्यपुस्तक के अलावा पठन हेतु अन्य पुस्तकों से बच्चों की आवश्यकतानुसार गीत, कविताएँ, कहानियाँ आदि बच्चों के साथ साझा करने की कोशिश रहती है, ताकि पठन सामग्री में मिलने वाली विविधता से बच्चों का आमना-सामना सतत प्रक्रिया के रूप में होता रहे। साथ ही यह मक़सद भी होता है कि पठन सामग्री उन्हें अपनी ओर आकर्षित कर पाए और इससे सीखने में आनन्द भी वे महसूस कर पाएँ। बच्चे पुस्तकों से कहानियों, चित्र कथाओं, बाल गीतों आदि का पठन करते हैं। पुस्तकों की जटिलता के क्रम में काम को ठीक से व्यवस्थित करने हेतु उपसमूह बनाए तो जाते हैं, पर बच्चे के लिए यह पूरी तरह खुला होता है कि अपनी रुचि व ज़रूरत के अनुसार दूसरे समूह में जाकर भी अपनी मनपसन्द किताब चुनकर पढ़ सकता है। कोई कहानी बच्चों को पसन्द आ जाए तो वे एक ही कहानी को कई बार भी पढ़ना चाहते हैं। पर उनसे बात की जाए तो वे ये भी समझ पाते हैं कि ऐसा करते रहने से उन्हें दूसरी किताबों में छुपी कहानियों के बारे में कैसे पता चल पाएगा, इसलिए और किताबें पढ़ना भी उतना ही ज़रूरी है। पढ़ते समय कुछ बच्चे स्वतंत्र रूप से पढ़ पाते हैं, कुछ धीरे-धीरे और एक से अधिक बार पढ़ते हैं। कुछ बच्चे अकेले किसी कोने में बैठकर, तो कुछ सीढ़ियों पर जाकर पढ़ना पसन्द करते हैं, वहीं कुछ अपने दोस्तों के साथ मिलकर उनसे बातचीत करते हुए। कुछ बच्चे पढ़कर समूह में कहानियाँ सुनाना पसन्द करते हैं, तो कुछ उन कहानियों के बारे में अपनी बात कहना पसन्द करते हैं। कुछ बच्चे पठन के आधार पर विषयवस्तु पर प्रश्न तैयार करके लाते हैं और समूह में पूछते हैं, तो दूसरे बच्चे उन प्रश्नों पर प्रतिक्रिया देने में रुचि व उत्साह दिखाते हैं। कोशिश बस यही रहती है कि बच्चे ज़्यादा-से-ज़्यादा अपनी बात को ख़ुद के शब्दों में कह पाएँ। कहानी या अन्य विषयवस्तुओं पर काम करते समय ये प्रयास ज़रूर रहता है कि जो भी सन्दर्भ काम में लिया गया है उसकी मदद से ठीक-ठाक स्वरूप में बच्चों के बीच एक संवाद ज़रूर हो पाए।

जो मैंने पाया

बच्चों के साथ रहे ये अनुभव फिर से मुझे इस विचार की गहराई तक जाने के लिए मजबूर करते हैं कि चिन्तन प्रक्रिया में भाषा किस तरह एक ज़रूरी हथियार की भूमिका निभा पाती है। एक अच्छा सन्दर्भ (कहानी, घटना, बच्चों के अपने अनुभव, कविता) बच्चों के साथ संवाद के कई तरह के आयाम खोल पाता है। यह बात इस मायने में भी महत्त्वपूर्ण लगती है कि अलग-अलग सन्दर्भों का पठन और उनपर बातचीत लिखित शब्दों के विभिन्न सन्दर्भों में अर्थ भरकर उसे जीवन से ऐसे जोड़ देते हैं कि लगता है वे शब्दों को सुनने भर से ही उन्हें महसूस करने लगते हैं। मसलन, किसी पुराने गीत की एक पंक्ति सुनकर ही हम बीते समय को जीकर वापस आज में लौट आते हैं। कभी किसी अच्छी कहानी को पढ़कर हम कैसे जीवन के घटनाक्रम को एक बार फिर से जी उठते हैं!

लिखित प्रतीकों का तब तक कोई अर्थ नहीं होता जब तक पाठक इन प्रतीकों को अर्थ नहीं देता। तभी हम देखते हैं कि कक्षाओं में बच्चे

इन प्रतीकों का उच्चारण करना सीख जाते हैं पर पूरा वाक्य या अनुच्छेद पढ़ लेने पर भी बता नहीं पाते कि पढ़ा क्या है। यह अर्थ बनाने की प्रक्रिया सीखनी पढ़ती है और इस तरह लगातार अलग-अलग घटनाक्रमों की यात्रा करते हुए बच्चे यह सीखते हैं और शब्दों के अर्थ धीरे-धीरे समृद्ध होते चले जाते हैं।

अलग-अलग मज़ेदार सन्दर्भों को सुनकर, पढ़कर और उनपर संवाद करने से बच्चे परिस्थितियों के बारे में अन्दाज़ा लगाते हैं, अनुमान से घटनाएँ गढ़ते हैं, घटनाओं के क्रम में सम्बन्ध देखने की कोशिश करते हैं, कार्य-कारणों के आधार पर सटीक तर्क करने की दिशा में सोचते हैं और उनके अनुभव के आधार पर उनकी व्याख्या करते हैं। जैसे– निशा ने कहानी की पात्र 'बिल्ली' के बारे में उसे पसन्द न करने की बात भी सहजता के साथ कही, और नापसन्द होने के बावजूद उसके पक्ष को ध्यान से देखने की कोशिश की कि किस तरह उन बच्चों को खाकर अपनी भूख मिटाना उस बिल्ली के लिए आख़िरी विकल्प रहा होगा।

बातचीत की इस प्रक्रिया में किसी विचार को लेकर उसे उचित-अनुचित के रूप में स्वीकारने या कहें उसे सही-ग़लत के रूप में निर्धारित कर देने के बीच में जो सब घट रहा होता है वह सबसे महत्त्वपूर्ण लगता है। इसी तरह वरुण की बात, "बिल्ली ने सब जगह ख़ूब दिमाग़ का इस्तेमाल किया, लेकिन उसने अपनी चालाकी से चिड़िया के बच्चों को खा लिया, जिसका ज़िम्मेदार चील को समझा गया और बिल्ली के हिस्से की सज़ा उसे मिली। और चिड़ियों ने चील की बात सुने बिना ही उसे सज़ा दे डाली, उनका ये निर्णय ग़लत था क्योंकि सही निर्णय तो तभी होता, जब कम-से-कम एक बार चिड़ियाँ चील से अपने बच्चों को मारने की वजह तो पूछ लेतीं", भी उतनी ही तर्कपूर्ण है। यहाँ गहराई से महसूस किया जा सकता है कि बच्चों के साथ इस तरह के संवाद सुनी बात, लिखित सन्दर्भ और उनके जीवन अनुभवों के बीच एक ऐसे लचीले पुल की तरह काम करते हैं, जहाँ बच्चे गिरते, सँभलते, थोड़ा सहारा लेते शब्दों से खेलने के लगातार प्रयास करते हैं। और अलग परिस्थितियों के अपने-अपने लिए नए परिदृश्य खोजने की उस कोशिश में चले जाते हैं, जहाँ से वे अपने विचारों को मनचाहे रूप-रंग का आकार देने की चाह में जुटकर चिन्तनशील होते नज़र आते हैं। यहाँ से सोच-विचार के कौशल को ज़रूरतभर खाद-पानी मिलते रहने का ज़रिया खुलता-सा नज़र आता है।

यह भी कि अकसर कुछ बच्चों की पहल से अन्य बच्चों के आत्मविश्वास को भी एक ख़ास तरह का सम्बल मिल रहा होता है, और मुझे लगता है मेरी कक्षा के कई बच्चों में सोच-विचार कर पाने की एक शैली धीरे-धीरे आकार ले रही है, जिससे वे सुने हुए विचारों के बारे में सहमति या असहमति की कुछ पर्याप्त वजहें या कहें, अपने स्तर के तर्क देख पाते हैं, और उन्हें उतनी ही सहजता के साथ अपना पक्ष रखते समय साझा भी कर पाते हैं। इन बच्चों के अपनी बात कह पाने के इस अन्दाज़ से मुझे लगता है कि वे परिस्थितियों और विकल्पों का चुनाव और निर्णय प्रक्रिया में भागीदारी करने के दौरान एक तरह की सजगता के साथ अपनी भूमिका अदा कर पाने की क्षमता को हासिल करने की दिशा में बढ़ रहे हैं।

अलका तिवारी ने शिक्षा में अपने काम की शुरुआत ज़िला बारां, राजस्थान में दिगंतर संस्था द्वारा चलाए जा रहे सहरिया समुदाय के बच्चों से जुड़े सन्दर्भशाला प्रोजेक्ट से की। फिर उन्होंने बोध शिक्षा समिति में विज्ञान शिक्षक के रूप में कार्य किया। वे 2012 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में विज्ञान की टीचर एजुकेटर के रूप में जुड़ी हैं। अलका 2019 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के टोंक स्कूल में विज्ञान और भाषा के शिक्षक के रूप में कार्य कर रही हैं। उन्हें शुरुआती कक्षाओं के बच्चों के साथ काम करना अच्छा लगता है।
सम्पर्क : alka.tiwari@azimpremjifoundation.org

इबारती सवालों पर काम के कुछ अनुभव

सन्दर्भ : माध्यमिक शाला हाथीटिकरा का भ्रमण

मारिया

इबारती सवाल हल करने के दौरान बच्चों के सामने आने वाली चुनौतियाँ और कठिनाइयाँ सभी जगह लगभग एक जैसी हैं। इसकी जड़ें दरअसल गणित शिक्षण के पारम्परिक तौर-तरीक़ों में निहित हैं, जिनमें गणित को सन्दर्भों से काटकर, सहभागिता के बिना और उपयोगिता के घटक को नज़रअन्दाज़ करते हुए सिखाना शामिल है। इस आलेख में कक्षा अवलोकन के ज़रिए इस समस्या के कारणों और इसके कुछ सम्भावित समाधानों का ब्योरा प्रस्तुत किया गया है। सं.

गणित शिक्षण में इबारती सवालों का बहुत महत्त्व है। यह न केवल बच्चों को गणित विषय की अमूर्त अवधारणाओं को दैनिक जीवन से जोड़ने में मदद करते हैं बल्कि बच्चों को अवधारणाओं को बेहतर तरीक़े से समझ पाने में भी सहायता करते हैं। साथ ही समस्या समाधान करने, निर्णय ले पाने जैसे कौशलों को अर्जित करने में भी मदद करते हैं। लेकिन कक्षा में हमने अकसर महसूस किया है कि अधिकांश बच्चे इबारती सवालों से दूर भागते हैं और इबारती सवालों को हल करने में बहुत-सी चुनौतियों का सामना करते हैं। बच्चे सवालों को पढ़कर, न तो समझ पाते हैं न ही निर्णय ले पाते हैं कि उन्हें कौन-सी संक्रिया करनी है। या तो वे कुल, शेष जैसे कुछ शब्दों को देखकर तय करते हैं कि कौन-सी संक्रिया करें या शिक्षक से यह पूछते पाए जाते हैं, "मैडम, इला जोड़ना है काय? सर, गुणा करबो कि भाग?" कक्षा 4 और 5 के गणित के लर्निंग आउटकम को देखें तो बच्चों से अपेक्षा होती है कि वे ख़ुद से कुछ इबारती सवाल भी बनाएँ, पर यहाँ भी बच्चे जूझते नज़र आते हैं।

जैसा कि हम जानते ही हैं कोरोना काल के विगत दो वर्ष शिक्षा जगत के लिए काफ़ी चुनौतीपूर्ण रहे। नियमित रूप से स्कूल और कक्षा में सीखने की प्रक्रियाओं के अभाव ने बच्चों के सीखने को काफ़ी नकारात्मक रूप से प्रभावित किया है। बच्चे पुरानी पढ़ाई अवधारणाओं को भूल चुके हैं, साथ ही नई कक्षा की अवधारणाओं पर भी उनके साथ पर्याप्त काम नहीं हो पा रहा है जिससे लर्निंग गैप जैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो रही हैं। इस दिशा में गणित में कुछ भी काम शुरू करने से पहले बच्चों की वर्तमान स्थिति को समझ लेना बहुत ज़रूरी है। इस सन्दर्भ में हाल ही में माध्यमिक शाला हाथीटिकरा जाना हुआ, जहाँ राजेश्वर सर के साथ मिलकर कक्षा 6 के बच्चों का स्तर समझने के लिए हमने वर्कशीट के माध्यम से आकलन किया। आकलन प्रपत्र के विश्लेषण से हमने पाया कि अधिकांश बच्चे संक्रियाओं, ख़ासकर घटाने, गुणा और भाग करने में चुनौती महसूस कर रहे हैं। अवधारणाएँ जैसे-जैसे जटिल होती जा रही हैं वैसे ही उन्हें न समझ पाने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ती जा रही है। उदाहरण के लिए, 22 में से 10 बच्चे हासिल वाले जोड़ के सवाल हल नहीं कर पाए वहीं घटाने, भाग करने में यह संख्या बढ़कर 20 बच्चों तक पहुँच जाती है। भिन्न के सवालों में भी ऐसा ही देखने को मिला। 21 बच्चे

भिन्न नहीं समझ पा रहे हैं। बात अगर इबारती प्रश्न समझकर हल करने की करें तो 13 बच्चे इससे जूझते नज़र आए एवं कक्षा के 22 बच्चों में केवल 1 ने ख़ुद से इबारती सवाल बनाने के प्रश्न को कार्यपत्रक में हल किया।

हमारे आकलन के निष्कर्षों के आधार पर हमने तय किया कि कक्षा में छोटे-छोटे काम से शुरू करते हुए बच्चों की लर्निंग रिकवरी में मदद करेंगे। एक क्षेत्र जिसपर तुरन्त काम करने की ज़रूरत हमें दिखी, वह थी बच्चों से इबारती सवाल बनवाना (क्योंकि कक्षा के 95 फ़ीसदी बच्चे इस समस्या से जूझ रहे थे) और यह कक्षा 4 व 5 का महत्त्वपूर्ण लर्निंग आउटकम भी है। इस दिशा में सबसे पहले कुछ शिक्षकों से यह समझने का प्रयास किया कि वे इबारती सवालों पर काम कैसे करते हैं? कुछ मदद मेरे शाला भ्रमण के दौरान किए कक्षा अवलोकन से भी मिली जिससे बच्चों को इबारती सवाल बनाने और हल करने में हो रही चुनौतियों के कुछ कारण समझ में आए जो निम्नानुसार हैं :

1. गणित शिक्षण के तरीक़ों को लेकर चुनौतियाँ : (अ) हम संक्रियाओं को पढ़ाना सीधे अंकों से शुरू करते हैं। बच्चों के साथ संक्रिया को लेकर दैनिक जीवन के उदाहरणों पर मौखिक बातचीत या तो बहुत कम होती है या बिलकुल नहीं। इसलिए बाद में जब अलग से इबारती सवालों को हल करने की बारी आती है तो बच्चे इन्हें अवधारणाओं से जोड़कर नहीं देख पाते।

(ब) शुरुआती कक्षाओं में इबारती सवाल हल कराते समय हम बच्चों को अलग-अलग तरीक़े से हल सोचने, सवाल को चित्र में निरूपित करके समझने के अवसर नहीं देते हैं जिससे ख़ुद से सवाल समझने की कोशिश बच्चे नहीं कर पाते हैं।

2. भाषा सम्बन्धी चुनौतियाँ : अकसर पाठ्यपुस्तक में दिए गए इबारती सवालों की भाषा जटिल होती है। बच्चों का भाषाई सन्दर्भ पूर्ण रूप से इन सवालों में शामिल नहीं होता है। आम बोलचाल की भाषा हमारी पाठ्यपुस्तक की साहित्यिक भाषा से काफ़ी अलग होती है। इसके साथ-साथ गणितीय भाषा समझने को लेकर भी कक्षा में व्यवस्थित प्रयास नहीं होते।

3. इबारती सवालों पर काम करने का हमारा तरीक़ा काफ़ी यांत्रिक होता है : इसमें अधिकांशतः हम एक कक्षा में पुस्तक से दो-तीन सवाल लेते हैं। बोर्ड पर उनका हल लिखकर बच्चों को समझाते हैं और बाक़ी के प्रश्नों को गृहकार्य के रूप में दे देते हैं।

4. इबारती सवाल बच्चों से बनवाना हमारी कक्षा प्रक्रिया का हिस्सा नहीं होता : अभी तक के अनुभव में मैंने कोई कक्षा ऐसी नहीं देखी जहाँ हम बच्चों को इबारती सवाल बनवाने पर कुछ व्यवस्थित योजना के साथ काम करते हों।

मेरे इन्हीं कुछ अनुभवों के आधार पर एक प्रक्रिया जो बच्चों को इबारती सवाल बनाना सीखने में मदद कर सकती है, वह है ख़ूब सारी मौखिक बातचीत, उनके दैनिक जीवन की घटनाओं को लेते हुए उनपर सोचना, कुछ स्थितियों की कल्पना करना और सवाल बनाना।

प्रक्रिया

हमने कक्षा में बच्चों के बाज़ार जाने के अनुभवों को लेकर कुछ प्रारम्भिक बातचीत की। मसलन, कौन-कौन बाज़ार गए हैं? आपने बाज़ार में कौन-कौन सी सब्ज़ियाँ, फल देखे हैं? क्या आपने कभी बाज़ार में ख़रीदारी की है? हमने बोर्ड पर कुछ सब्ज़ियों के चित्र झटपट बना लिए और बच्चों से चित्र में दर्शाई सब्ज़ी अभी किस क़ीमत पर बाज़ार में मिल रही होगी, यह बताने को कहा। बच्चों ने पिछले हफ़्ते बाज़ार में सब्ज़ियों के जो भाव थे उन्हें याद करते हुए बताया कि टमाटर 50 रुपए किलो मिल रहा था, प्याज़ 25 रुपए, भाटा 40 रुपए किलो है। कुछ बच्चे असहमति भी जता रहे थे कि उन्होंने कल-परसों ही टमाटर 30 रुपए में ख़रीदा है। धनिया, लहसुन और मिर्ची के बारे में उन्होंने बताया कि वे किलो नहीं पाव में ख़रीदते हैं या 5, 10 रुपए का लेते हैं। इसके

बाद हमने कुछ और मौखिक सवाल पूछे। जैसे– बोर्ड पर बहुत-सी सब्ज़ियों के नाम लिखे हैं, मान लो हम में से कोई बाज़ार जाते हैं और 1 किलो आलू, 2 किलो टमाटर ख़रीदते हैं तो सब्ज़ीवाले को कितने पैसे देने होंगे? उन्होंने बोर्ड पर लिखे दाम को देखते हुए गुणा करने या जोड़ने जैसी अवधारणाओं को मानसिक रूप से बिना किसी पेपर-पेंसिल पर अंक लिखे ही बिलकुल सही-सही बता दिया। इस तरह के और सवाल हम पूछते गए, बच्चे एक ही सवाल में गुणा, भाग, जोड़ना-घटाना सब करके बता पा रहे थे।

इसके बाद हमने उनसे पूछा कि ऐसे ही बाज़ार या दुकान में ख़रीदारी करने के सन्दर्भों को लेकर कुछ प्रश्न बना सकते हैं क्या? बच्चों ने चुनौती स्वीकार की और तत्काल 5 बच्चों ने 10 मिनट का समय देने पर 2-3 सवाल बनाए। इसी कार्य को हमने शनिवार को करने के निर्देश दिए कि प्रत्येक बच्चे को कम-से-कम 5 सवाल बनाने हैं।

बच्चों द्वारा बनाए सवालों के कुछ विश्लेषण

1. बच्चों ने शादी की ख़रीदारी, जन्मदिन, बाज़ार या दुकान में ख़रीदारी, मेला, यहाँ तक कि चोरी के सन्दर्भों को लेकर भी बहुत रोचक सवाल बनाए जो अकसर हमारी पाठ्यपुस्तकों से नदारद होते हैं।
2. बच्चों ने अधिकांशतः अपने सहपाठियों के नाम सवाल में शामिल किए, जो बताता है कि बच्चे गणितीय अवधारणाओं को अपने सन्दर्भ में बख़ूबी ढाल पा रहे हैं और अपने दैनिक जीवन से जोड़कर समझ पा रहे हैं।
3. बच्चों के सवालों में स्थानीय भाषा का उपयोग भी ख़ूब दिखा, जैसे– भाटा, पताल, मखना, इत्यादि।
4. चूँकि बच्चों के लिए सवाल बनाने का पहला अनुभव था, अत: बहुत कम बच्चों ने सवालों में स्पष्ट तरीक़े से सब्ज़ियों के दाम लिखे थे जिनसे सवाल को हल किया जा सके।
5. कुछ बच्चों ने गुणा, भाग, लाभ और हानि के सवाल भी बनाए।

चूँकि हमने कक्षा 6 के बच्चों का आकलन किया था और उनके वर्तमान स्तर को लेकर कुछ समझ बना पाए थे तो 'इबारती प्रश्न बनाने' की गतिविधि को लेकर हम स्तरवार भी बच्चों के साथ कुछ काम करके विश्लेषण कर पाए, जो निम्नानुसार है :

1. कुल 23 बच्चों ने इसको लेकर काम किया और बच्चों के स्तर अनुसार भी कुछ चीज़ें हम कर पाए। जैसे– बुनियादी स्तर वाले

बच्चों द्वारा बनाए सवालों के कुछ सैम्पल

प्रश्न 4. फूल गोभी का दाम 80 रुपये है तो बताओ आधा किलो फूल गोभी कितने रुपये में मिलेगा?

प्रश्न 5. 2 किलो बैंगन का दाम 80 रुपये है तो 1 किलो बैंगन का दाम कितना होगा!

(2) शानि और मंजु दोनों मेला जा रहे थे। और शानि के पास 800 रू थे और मंजु के पास 500 थे। तभी रोशन आकर शानि के 175 और मंजु के 400 रू चुरा लिया तो अब बताइए की के पास कितने रुपये बचे

6 बच्चों (अभय, गौरव, राहुल, सौरव, दीपिका, अनिरुद्ध) को केवल कुछ सब्ज़ियों के चित्र बनाकर उनका नाम और दाम लिखने को कहा। इसपर उन्होंने अच्छी कोशिश की। कुछ बच्चे संख्या को ठीक से नहीं लिख पाए, वहीं कुछ ने केवल चित्र बनाते हुए नाम लिखा। इन बच्चों के साथ मौखिक प्रश्न पूछने पर कुछ काम करते हुए लेखन पर जाना ज़्यादा कारगर होगा।

2. अधिकांश बच्चों ने 5 से 7 सवाल बनाए। 6 बच्चों ने सवालों को स्पष्ट तरीक़े से नहीं लिखा और मुख्यतः एक ही तरीक़े के सवाल बनाए, जिसकी हमने कक्षा में चर्चा के दौरान बातचीत की थी। बाक़ी 8 बच्चों ने ख़ुद से सोचकर भी नए-नए तरीक़ों और एक से ज़्यादा सन्दर्भों के सवाल बनाए। इनके बनाए सवालों पर स्पष्टता को लेकर थोड़ा और काम
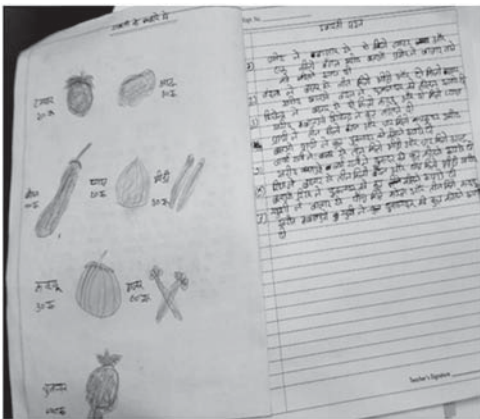
होना चाहिए। मसलन, कई जगहों पर सवाल में इन्होंने कोई अलग सब्ज़ी ली है जिसका चित्र नहीं बनाया और दाम भी नहीं लिखे।

3. दो बच्चे कक्षा स्तर पर हैं। इन्होंने स्पष्ट और अलग-अलग संक्रिया एवं सन्दर्भ के सवाल बनाने का प्रयास किया।

फ़ीडबैक, पीयर आकलन / लर्निंग के मौक़े

हमने बच्चों के सवालों को बारीक़ी से देखा और सभी के लिए फ़ीडबैक लिखा। बच्चों के सवालों के साथ लिखित फ़ीडबैक को कक्षा में साझा किया गया। सभी बच्चे अपना-अपना फ़ीडबैक देखने के लिए काफ़ी उत्सुक दिखे। जिन बच्चों को पढ़ने में चुनौती है उन्हें उनके सहपाठियों और हमने पढ़कर फ़ीडबैक समझने में मदद की। फ़ीडबैक पढ़ने के बाद बच्चों को अपने बनाए सवालों की अदला-बदली करने को कहा गया। फिर सहपाठियों से एक दूसरे के सवालों को सही करने, स्पष्ट तरीक़े से लिखने में मदद करने को कहा गया जो उन्होंने बख़ूबी किया, साथ ही एक दूसरे के बनाए सवाल भी हल किए।

सवाल बनवाने की प्रक्रिया को जारी रखते हुए अगले हफ़्ते 'मेला' के सन्दर्भ पर बातचीत की और बच्चों से सवाल बनाने को कहा। बच्चों द्वारा बनाए सवालों में पिछली बार की तुलना में अधिक स्पष्टता दिखी। उन्होंने फ़ीडबैक पर काम करते हुए इस बार चीज़ों के दाम भी सवाल में शामिल किए।

अन्त में

सीखने-सिखाने की इस प्रक्रिया में गणित विषय की प्रकृति और गणित शिक्षण के तरीक़ों को लेकर जो कुछ पढ़ा था, उसपर विश्वास और बढ़ गया। गणित की किसी भी अवधारणा पर काम करने के क्रम में बच्चों से मौखिक

बातचीत करना, उनके अनुभव सुनना और उन अनुभवों को गणितीय भाषा से जोड़ना एक कारगर तरीक़ा हो सकता है जिसमें बच्चे समझ के साथ आगे बढ़ पाते हैं। मुझे लगता है बच्चों से इबारती सवाल बनवाने का काम अकसर कक्षाओं में संजीदगी से नहीं करवाया जाता है, पर अगर इसपर व्यवस्थित काम हो तो बच्चे न केवल ख़ुद से इबारती सवाल बनाना सीखते हैं बल्कि पढ़ाई जा रही अवधारणा को भी बेहतर समझ पाते हैं और यह समझ इबारती सवाल हल करने के उनके कौशल को और अधिक सुदृढ़ कर रही होती है।

पाठ्यपुस्तक में दिए सवालों को समझने में हम बच्चों की मदद करना चाहते हैं तो सवालों को पढ़कर उनका अनुवाद बच्चों की भाषा में कर देने या बोर्ड पर हल समझा देने भर से काम नहीं चलेगा। हमें ज़रूरत है कुछ वैकल्पिक तरीक़ों को सोचने की जिससे बच्चे आत्मनिर्भर बनें एवं सोचने और चिन्तन करने की मानसिक प्रक्रियाओं से गुज़रें। इस दिशा में यह एक अच्छा प्रयास है कि हम बच्चों से कुछ सन्दर्भों यानी, मेला, बाज़ार, दुकान आदि को लेकर मौखिक बातचीत करें, उनके अनुभव सुनें और कुछ घटनाओं / स्थितियों की कल्पना करते हुए बच्चों को ख़ुद से सवाल बनाने का प्रयास करने दें। बच्चों द्वारा बनाए सवालों में उनके सन्दर्भ, उनकी भाषा की झलक मिलती है जो उन्हें गणित की अमूर्त अवधारणाओं को महसूस करने और दैनिक जीवन में घटित हो रही घटनाओं से जोड़कर समझ पाने में मदद करती है। यह प्रक्रिया नियमित रूप से हमारी गणित की कक्षा में की जाए तो निश्चित ही बच्चे

बेहतर सवाल बनाएँगे और हमारे पास बच्चों द्वारा बनाए सवालों का अच्छा संकलन मौजूद होगा। इससे हम पाठ्यपुस्तक के इबारती सवालों पर जाने से पहले बच्चों द्वारा बनाए स्थानिक सन्दर्भ के सवालों पर काम कर पाएँगे जिससे गणित की अवधारणाओं, इबारती सवालों को समझना आसान हो पाएगा। साथ ही बच्चे जब एक दूसरे के बनाए सवालों को पढ़कर फ़ीडबैक देंगे तो कक्षा में पीयर लर्निंग के अवसर भी निर्मित हो रहे होंगे।

मारिया पिछले 5 वर्षों से शिक्षा के क्षेत्र से जुड़ी हुई हैं। शिक्षा, शिक्षक, बच्चे और शिक्षण की प्रक्रियाओं को समझने में विशेष रुचि रखती हैं। साल 2017 से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन मे रिसोर्स पर्सन के रूप में कार्य कर रही हैं। वर्तमान में ज़िला जांजगीर-चांपा के नवागढ़ ब्लॉक के शिक्षक और बच्चों के साथ काम रही हैं।

सम्पर्क : maria.dey@azimpremjifoundation.org

शिक्षा की निरन्तरता बनाए रखने की एक कोशिश

सन्दर्भ : लॉकडाउन

कविता कपिल और कल्पना पंवार

यह लेख कोरोना महामारी के दौर में स्कूली शिक्षा को जारी रखने के लिए किए गए प्रयासों के बारे में है। लेखिका बताती हैं कि शुरुआत ऑनलाइन माध्यम से हुई। उसके बाद उन्होंने वर्कशीट के ज़रिए बच्चों से जुड़ने के बारे में सोचा। यह सोचते हुए वर्कशीट बनाई गईं कि अगर बच्चों के साथ नियमित बातचीत नहीं भी हो पाए, तो भी वे वर्कशीट को समझ पाएँ और उसपर काम कर पाएँ। इन बनाई गईं वर्कशीटों पर वे नियमित रूप से बच्चों और अभिभावकों के साथ अन्त:क्रिया करती रहीं और इस अन्त:क्रिया के आधार पर उन्हें बेहतर भी बनाती गईं। इस पूरे अनुभव के आधार पर लेखिका यह भी कहती हैं कि वर्कशीट सीखने-सिखाने का अच्छा तरीक़ा है लेकिन यह हमेशा ही अच्छा होगा, यह ज़रूरी नहीं है। सीखने-सिखाने का बेहतर तरीक़ा क्या होगा, यह परिस्थितियों पर भी निर्भर करता है। सं.

जिन अनुभवों और आयामों को इस लेख में साझा किया गया है, कोरोना के दौर में उनके बारे में सोच पाना हमारे लिए बहुत ही मुश्किल रहा। लेकिन आज इनके बारे में सोचने पर ऐसा लगता है कि जब सारे रास्ते बन्द हो जाते हैं और उम्मीदें छूटने लगती हैं तब हम जीवन के कुछ बहुमूल्य अनुभवों से गुज़रते हैं। कोरोना महामारी के दौर में शिक्षा के क्षेत्र में कार्य करना एक बहुत बड़ी चुनौती रही है। जिस समय सभी घरों में बन्द थे, वहाँ 5-6 आयु वर्ग के बच्चों की शिक्षा में निरन्तरता बनाए रखना बहुत मुश्किल काम था। जब इस बीमारी का अन्तिम छोर नज़र नहीं आ रहा था तब लगने लगा कि अब कहीं से तो शुरुआत करनी पड़ेगी। और तब हम औपचारिक शिक्षा के ढाँचे से बाहर निकलकर शिक्षा में नए विकल्प खोजने की तरफ़ बढ़ने लगे।

सभी की भाँति हमने भी ऑनलाइन माध्यम से बच्चों से जुड़ने की शुरुआत की और कुछ-कुछ गतिविधियों, जैसे– अपना परिचय, कविता, आर्ट, संगीत और व्यायाम, आदि के वीडियो व्हाट्सएप पर भेजना शुरू किया। इसके बाद बच्चों के द्वारा भी वीडियो आने लगे और उम्मीद की एक किरण नज़र आने लगी।

ऑनलाइन माध्यम में कुछ समस्याएँ भी थीं। एक सबसे बड़ी समस्या थी कि जहाँ एक ओर घर की आधारभूत ज़रूरतें पूरी करने में दिक़्क़तें थीं, वहीं फ़ोन में महँगा नेट रिचार्ज करना एक बड़ी समस्या थी, सभी के पास स्मार्टफ़ोन की उपलब्धता भी नहीं थी। लॉकडाउन खुलने के बाद जिन बच्चों के माता-पिता दोनों ही काम पर जाते थे, उनके पास वीडियो बनाकर भेजने का समय नहीं था।

जैसे-जैसे कोरोना का असर दिख रहा था, वैसे-वैसे यह भी स्पष्ट हो रहा था कि ऑनलाइन से आगे बढ़कर और भी कुछ चीज़ें सोचनी होंगी ताकि हम सभी तक अपनी पहुँच सुनिश्चित कर पाएँ। अनलॉक 1 के बाद कुछ रियायतें दी गईं जिनके आधार पर हमने साप्ताहिक वर्कशीट के बारे में सोचना शुरू किया।

वर्कशीट

वर्कशीट प्रारम्भिक बाल्यावस्था शिक्षा के क्षेत्र में कोई नया शब्द नहीं है। पहले भी हम कक्षा में ज़रूरत के अनुसार समय-समय पर वर्कशीट का प्रयोग करते रहे हैं, लेकिन पहले और अभी की स्थिति में एक बड़ा अन्तर था। अमूमन वर्कशीट का प्रयोग बच्चों के साथ एक प्रारम्भिक टूल के रूप में नहीं करते हैं। जब बच्चा कक्षा प्रक्रियाओं को समझने लगता है और सुनने, बोलने जैसी क्षमताओं से आगे बढ़कर पढ़ने-लिखने की प्रक्रिया में प्रवेश करता है तब वर्कशीट का प्रयोग करते हैं। माने, बच्चे कुछ ऐसी क्षमताएँ हासिल कर लें कि वे वर्कशीट को देखकर समझ पाएँ। लेकिन कोरोना की इस स्थिति में, हमने सभी बच्चों तक अपनी पहुँच बनाने के माध्यम के रूप में वर्कशीट को ही लिया। वर्कशीट बनाने की यह प्रक्रिया चुनौती के साथ-साथ सीखने के अवसर लेकर आई, जहाँ शुरुआत में हमारे लिए यह समझना बहुत मुश्किल था कि ऐसे छोटे बच्चों के लिए वर्कशीट किस प्रकार बनाई जाए, जैसे–

- वर्कशीट में क्या कार्य दिया जाए?
- कितने पेज की बनाई जाए?
- गतिविधियाँ कैसी हों?
- क्या सिर्फ़ रंग भरने वाली गतिविधि दी जाए?
- अन्य और किस प्रकार की गतिविधि दी जा सकती हैं?
- इसकी भाषा को कैसे इतना सरल किया जाए कि अभिभावक इसे समझ पाएँ?
- इसमें बड़े चित्र का उपयोग किया जाए या मध्यम आकार के चित्रों से उन्हें समझ आ जाएगा?

चित्र : प्रशांत सोनी

- चित्रों के अनुपात पर ध्यान दिया जाए। मसलन, यदि किसी चित्र में मुर्ग़ी बड़ी और गाय छोटी दिख रही है तो कहीं बच्चा मुर्ग़ी को बड़ा मानकर उसपर गोला न कर दे, क्योंकि चित्र में वह बड़ी दिख रही है, जबकि वास्तविकता में गाय बड़ी और मुर्ग़ी छोटी होती है।
- एक पेज में कितने चित्र और कितने निर्देश रखे जाएँ ताकि अभिभावकों और बच्चों को समझ आ सकें?
- और सबसे मुख्य प्रश्न यह कि बनाई गई वर्कशीट बच्चे के सीखने में कैसे मदद करेगी?

वर्कशीट का उपयोग हम केवल पढ़ने-लिखने के रूप में देख पा रहे थे। बच्चों को सुनने और बोलने के अवसर इसके ज़रिए नहीं मिल पा रहे थे। इसके साथ ही हमें यह भी समझ नहीं आ रहा था कि इसे करने में बच्चे को अपने परिवार से कितनी मदद मिल पाएगी। मनोस्थिति की इस उथल-पुथल के चलते शुरुआत कुछ सरल चित्रों और कौशलों से की गई। इसके तहत मिलान करने और रंग भरने की गतिविधियाँ, शरीर के अंगों को उनके द्वारा

किए जाने वाले कामों से मिलाने, छोटे-बड़े में अन्तर बताने, बड़े चित्र में रंग भरने, जैसी गतिविधियाँ वर्कशीट में दी गईं।

वर्कशीटों पर काम का सफ़र

सबसे पहली वर्कशीट कुल 2 पेज की थी। इसमें आगे और पीछे दोनों तरफ़ चित्र बने हुए थे। यह वर्कशीट बच्चों तक पहुँचाई गई। साथ ही प्रत्येक बच्चे के अभिभावक से वर्कशीट पर किए जाने वाले कार्य को लेकर बात की गई। उन्हें बताया गया कि बच्चे को इसमें क्या करना है, वे बच्चों की मदद कैसे कर सकते हैं, आदि। अभिभावकों से इस बारे में भी बात की गई कि क्या वर्कशीट में दिया गया कार्य उनको आसान लगता है, और क्या बच्चे इसे कर पाएँगे। ज़्यादातर अभिभावकों ने कहा कि यह आसान है बस पृष्ठों की संख्या बढ़ा दी जाए। केवल 2 पेज बच्चे एक-दो दिन में ही कर लेंगे। इसी को आधार मानते हुए अगले सप्ताह के लिए दूसरी वर्कशीट 4 पेज की बनाई गई।

एक सप्ताह के बाद वर्कशीट वापस आईं। उनका अवलोकन करने पर पाया कि लगभग सभी बच्चों ने एक स्तर पर इस कार्य को करने की कोशिश की थी। इसे देखते हुए हमने वर्कशीट में बच्चे के लिए और सोचने के अवसर तलाशने शुरू किए। अपने आसपास से जुड़ी चीज़ों को लेकर उसपर आधारित काम वर्कशीट में कराना शुरू किया और निरन्तर इसमें सुधार किया। कोरोना के हालात सुधरने पर बच्चों के घर विज़िट की। बच्चों से बातचीत कर उनके द्वारा किए गए वर्कशीट के काम को समझने लगे। कुछ-कुछ चीज़ें समझ आईं। मसलन, कुछ अभिभावक बहुत अच्छे-से वर्कशीट को लेकर बच्चों से बात कर रहे हैं लेकिन कुछ स्थितियाँ बिलकुल विपरीत थीं। कुछ अन्य अभिभावक बच्चों से काम करवाते समय कोई बातचीत नहीं कर रहे थे, बल्कि यांत्रिक रूप से केवल वर्कशीट पूरी करवा रहे थे। इस स्थिति को समझने की कोशिश में सामने आया कि अभिभावकों से इस सन्दर्भ में बातचीत करने की ज़रूरत है कि वर्कशीट करवाने के दौरान बच्चों से बातचीत कैसे की जाए और क्या-क्या बात की जा सकती है? इसके भी कुछ बिन्दु गतिविधि के साथ लिखकर भेजने की कोशिश की, साथ ही वर्कशीट देते समय अभिभावकों और बच्चों से स्पष्टता के साथ बात भी की।

यह लगने लगा था कि वर्कशीट बच्चों से जुड़ने में मज़बूत भूमिका अदा कर रही है। एक बड़ी चुनौती और थी कि वर्कशीट को और बेहतर कैसे बनाया जाए ताकि बच्चों को पढ़ने-लिखने के साथ-साथ अन्य प्रारम्भिक कौशलों, जैसे— सुनने और बोलने, अवलोकन, खोज और विश्लेषण, आदि के अवसर भी मिलें।

अगली कोशिश वर्कशीट को थीम से जोड़कर और बेहतर बनाने की थी। शुरुआत में दी गई वर्कशीट की अधिकतर गतिविधियाँ 'मैं और मेरा परिवार' थीम को लेकर थीं। इनमें परिवार में कौन-कौन है, शरीर के अंगों की पहचान और उनके कार्य को लेकर विवरण दिया गया था। दूसरी वर्कशीट में आसपास के

चित्र : प्रशांत सोनी

बच्चो से नीचे दिये गये जानवरो को लेकर बात करे कि कौन क्या खाता है जिस चीज़ को वह जानवर नही खाता उस पर गोला बनाने को कहे ।इसके अलावा शाकाहारी और मांसाहारी जानवरो के बारे में भी बात करे।

चित्र : वर्कशीट नमूना 1

वातावरण अर्थात, जानवर, भोजन और पेड़-पौधे, जल आदि थीम-आधारित गतिविधियाँ थीं। गणित के अन्तर्गत भी विभिन्न आकृतियों की पहचान, बड़े और छोटे की पहचान, कम और ज़्यादा का अनुमान लगाना, अलग आकृति को पहचानना आदि गतिविधियाँ वर्कशीट के माध्यम से कराई गईं।

यही नहीं, बच्चों के घर पर उनकी मदद करवाने के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर इन्हें तीन स्तरों पर बनाया गया :

- स्तर 1 : उन बच्चों के लिए, जहाँ घर में उनकी सहायता के लिए कोई नहीं था, सरल रंग भरने, चित्रों को देखकर बिना निर्देशों को पढ़े केवल चित्र-आधारित गतिविधियाँ दी गईं। जिनमें बच्चे दिए गए उदाहरण या कभी-कभार पड़ोसियों द्वारा मदद करने पर बच्चे यह समझ पाते थे कि वर्कशीट में क्या करना है।

- स्तर 2 : वे बच्चे जिनके अभिभावक हिन्दी पढ़ पाते थे और बच्चे को कार्य में मदद कर पाते थे। यहाँ भी अभिभावक बच्चों को केवल मौखिक सहयोग के लिए होते थे, बाक़ी गतिविधियाँ बच्चों के करने हेतु ही बनाई जाती थीं।

- स्तर 3 : ऐसे बच्चों के लिए जिनके अभिभावक अँग्रेज़ी भी पढ़-लिख लेते थे और सक्रियता से बच्चों के पठन-पाठन में मदद कर पाते थे। इस समूह में गतिविधियाँ एक स्तर कठिन होती थीं क्योंकि प्रारम्भिक कौशलों में बच्चे काफ़ी निपुण थे।

बच्चों के नज़रिए से वर्कशीट की समझ

घर की विज़िट के दौरान बच्चों से की गई बातचीत, वर्कशीट की समझ, इसके सुधार और बेहतरी में काफ़ी अहम रही। एक विज़िट के दौरान जब एक बच्ची से वर्कशीट के एक चित्र के बारे में पूछा तो उसने उसका नाम नहीं बताया। एक शिक्षक के नाते उसकी मदद करने के लिए मैंने अपनी समझ के अनुसार उसे बतख़ और डक बोला, पर वह सहमत नहीं हुई। मुझे एहसास हुआ कि शायद ये कुछ और बोलना चाह रही है। मैं उससे पूछने लगी, और उस बच्ची ने मुझे काफ़ी समझाने की कोशिश की, पर मैं समझ न सकी। उसने अपने परिवेश के अनुसार मुझे बताया कि यह, यहाँ रहता है, खेत में भी होता है। मैंने उसके घरवालों की मदद ली कि यह क्या बता रही है? उन्होंने बताया कि ये हंस के बारे में बात कर रही है। तब मुझे लगा कि वह भी ग़लत नहीं थी। उसने हंस के बारे में काफ़ी कुछ सही बताया और सरलता से कहा, "मुझे नहीं पता यह क्या खाता है क्योंकि मैंने इसे कभी खाते नहीं देखा है।" यही नहीं, ऐसे और भी चित्र थे जिन्हें शायद हम अपने नज़रिए से देखते हैं और

वही बताते हैं, लेकिन बच्चों की नज़र में वो कुछ और होते हैं। जैसे– रोटी को एक बच्चे ने बर्गर कहा था, और चींटी को मधुमक्खी।

ऐसे उदाहरण भी हैं जिनसे यह समझने में मदद मिली कि हमें वर्कशीट को लेकर अभिभावकों के साथ क्या और कितना संवाद करना है। एक गतिविधि में बच्चों को घर में गोल वस्तुएँ ढूँढ़ने और साथ ही उनका चित्र बनाने का काम दिया गया था। इस गतिविधि में अभिभावकों ने अपनी समझ के अनुसार पृथ्वी, चाँद, आदि चीज़ें बना दीं। जब बच्चों से पूछा गया तो वह इन चित्रों को लेकर स्पष्ट नहीं थे। अभिभावकों से भी बात की गई कि हमें बच्चे को ऐसी चीज़ें नहीं रटानी हैं जिनका बच्चे अपनी समझ से कोई सम्बन्ध न जोड़ पाएँ या जो उनके अनुभव से मेल न खाती हों। जब बच्चों को उसके आसपास चीज़ें देखने को कहा तो उन्होंने स्वयं से ही काफ़ी चीज़ें ढूँढ़ीं, जैसे– कटोरी, गेंद, ढक्कन, घड़ी, चूड़ी, बिन्दी, रोटी आदि। अभिभावकों के साथ हुए ऐसे अनुभवों के मद्देनज़र अभिभावकों से सीखने की प्रक्रिया को लेकर लगातार बात की गई कि वे बच्चों को आसपास की चीज़ों का अवलोकन करने, उन्हें सोचने और समझने के भरपूर मौक़े प्रदान करें।

एक और उदाहरण है जहाँ रसोई में खाना बनाते हुए एक आदमी के चित्र को बड़ा करके केन्द्रित किया गया था, और महिला के चित्र को एक किनारे छोटा-सा कुछ और कार्य करते हुए दिखाया गया था। इसपर एक बच्चे का स्पष्ट व्यंग्य था, "पापा कोई खाना बनाते हैं क्या?" उसके अनुसार यह ग़लत था क्योंकि खाना मम्मी बनाती हैं और इसलिए उसका मानना था कि यहाँ ग़लत फ़ोटो लगाई गई है।

बच्चों और अभिभावकों के साथ हुए ऐसे अनुभवों और बातचीत ने उनके नज़रियों को समझने के अवसर दिए और इनमें बनी समझ को भी हम वर्कशीट में जोड़ते गए। क्योंकि यह अभिभावकों और बच्चों दोनों के नज़रियों को

चित्र : वर्कशीट नमूना 1

एक साथ समझने के अवसर देता था। ऐसा ही प्रयास हमने एक कविता को वर्कशीट में देते वक़्त किया जहाँ 'मम्मी की रोटी गोल गोल, पापा का पैसा गोल गोल' को बदलकर 'खाने की रोटी गोल गोल और रुपए का पैसा गोल गोल' कर दिया।

हमने जो सीखा

स्कूल बच्चे के सम्पूर्ण विकास पर काम करने का मौक़ा देता है। वर्कशीट एवं ऑनलाइन

माध्यम स्कूल और कक्षा का विकल्प नहीं हो सकते। इनकी एक सीमा है। लेकिन कोरोना की विपरीत परिस्थितियों में ऑनलाइन माध्यम और वर्कशीट बच्चों के साथ सीखने-सिखाने की प्रक्रिया को जारी रखने का ज़रिया बने। ये शिक्षा की निरन्तरता को बनाए रखने में कुछ हद तक मददगार भी हुए। वर्तमान स्थिति में शिक्षा को एक नए नज़रिए से देखने का मौक़ा मिला कि कैसे अलग-अलग स्थितियों में शिक्षा के मायने और तरीक़े बदलते हैं। यह भी समझ आया कि बच्चों को दिए जाने वाले काम के माध्यम से भी अभिभावकों से जुड़ा जा सकता है और बच्चों की शिक्षा के बारे में उनसे बात की सकती है।

इस पूरे काम में कुछ और बातें भी अवलोकित हुईं और समझ आईं। वो थीं :

- शिक्षा को बच्चों के परिवेश में रहकर उनके जीवन से जोड़कर समझने और देखने का मौक़ा मिला।
- यह समझ आया कि स्कूल में एक जैसे दिखने वाले बच्चे किस तरह के अलग परिवेश से आते हैं।
- बच्चों के साथ उनके परिवार, रहन-सहन और परिवार में उनकी शिक्षा को लेकर सोच को समझने का मौक़ा मिला।
- माता-पिता हमेशा इस भ्रम में जीते हैं कि स्कूल और शिक्षक ही शिक्षा के कार्य को आगे बढ़ा सकते हैं। वर्तमान स्थिति में उनकी सोच में बदलाव आया है कि वह स्वयं भी शिक्षा के क्षेत्र में अहम भूमिका निभा सकते हैं।
- बहुत जगह देखने को मिलता है कि पढ़ने-पढ़ाने के कार्यों में बच्चे का विश्वास सबसे ज़्यादा शिक्षक पर होता है। वे सोचते हैं कि शिक्षक ही ये काम कर सकते हैं उनके माता-पिता नहीं। आज जब अभिभावक पढ़ने-पढ़ाने के कार्य में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं, तो बच्चे को भी इस बात का एहसास हो रहा है कि माता-पिता भी इस कार्य में

चित्र : प्रशांत सोनी

उसकी मदद कर सकते हैं।

- एक महत्त्वपूर्ण सीख यह रही कि हर बच्चे का अपना अलग दृष्टिकोण होता है और स्कूल आकर बच्चे एक ही साँचे में ढलने लगते हैं, जबकि प्रत्येक बच्चे का अपनी शैली, प्रतिभा और चीज़ों को लेकर अपना नज़रिया होता है। इस दौरान हम यह भी समझ पाए कि भविष्य में सीखने के लिए कैसे हम अपनी कक्षा में ऐसा माहौल बनाएँ जहाँ बच्चे किसी शिक्षक या अन्य बच्चे के नहीं, अपितु स्वयं के नज़रिए को रख पाएँ।
- शिक्षा की जब हम बात करते हैं तब हम यह जानते और समझते हैं कि

शिक्षा कक्षा-कक्ष के अन्दर सीमित नहीं होती। बच्चे अपने परिवेश और अन्य बच्चों के साथ में सीखते हैं, लेकिन कहीं-न-कहीं हम अभी शिक्षा को शिक्षक और स्कूल तक सीमित कर देते हैं। वर्तमान समय में हमें शिक्षा को एक अलग नज़रिए से देखने और शिक्षा व्यवस्था में अनौपचारिक शिक्षा को और मज़बूत करने की ज़रूरत है। साथ ही कुछ ऐसे माध्यमों को मज़बूत करने की भी ज़रूरत है जिनसे भविष्य में सीखने की प्रक्रिया बाधित न हो।

- हमें अपनी कक्षाओं को और लचीला बनाने की आवश्यकता है ताकि बच्चों के परिवेश को जगह मिले और शिक्षा उनके जीवन व अनुभवों से जुड़ी हो।

कविता कपिल को शिक्षा में कार्य करने 6 वर्ष का अनुभव है। इन्होंने 4 साल तक चिराग संस्था में कार्य किया है और पिछले 2 सालों से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में काम कर रही हैं। फ़िलहाल अज़ीम प्रेमजी स्कूल, उधम सिंह नगर, दिनेशपुर, उत्तराखंड में अध्यापन कार्य कर रही हैं।
सम्पर्क : kavita.kapil@azimpremjifoundation.org

कल्पना पंवार को शिक्षा में कार्य करने का 4 वर्ष का अनुभव है। वह 4 साल से अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन के साथ जुड़ी हैं। फ़िलहाल अज़ीम प्रेमजी स्कूल, उधम सिंह नगर, दिनेशपुर, उत्तराखंड में अध्यापन का कार्य कर रही हैं।
सम्पर्क : kalpana.panwar@azimpremjifoundation.org

डेड पोएट्स सोसायटी

कविता के ज़रिए शिक्षा के व्यापक उद्देश्यों को उभारती फ़िल्म

तारेंद्र किशोर

हम अकसर कविता को लेकर कई तरह के कथन सुनते हैं। मसलन, कविता मानवीय संवेदनाओं व मनोभावों की रचनात्मक अभिव्यक्ति है, कविता जीवन का संगीत व सौन्दर्य है, वह अन्तःकरण की पुकार है, आदि। कविता में वह सामर्थ्य है जो किसी कठोर प्रवृत्ति के व्यक्ति में भी दया व करुणा का भाव जागृत कर दे। हिन्दी के प्रसिद्ध आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने 1909 में *सरस्वती* पत्रिका में छपे अपने निबन्ध 'कविता क्या है', में लिखा, "कविता मनोवेगों को उत्तेजित करने का एक उत्तम साधन है। यदि क्रोध, करुणा, दया, प्रेम, आदि मनोभाव मनुष्य के अन्तःकरण से निकल जाएँ तो वह कुछ नहीं कर सकता। कविता हमारे मनोभावों को विकसित कर हमारे जीवन में एक नया जीव डाल देती है। हम सृष्टि के सौन्दर्य को देखकर मोहित होने लगते हैं। कोई अनुचित या निष्ठुर काम हमारे लिए असह्य होने लगता है। हमें जान पड़ता है कि हमारा जीवन कई गुना अधिक होकर समस्त संसार में व्याप्त हो गया है।"

ऑस्ट्रेलियाई फ़िल्ममेकर पीटर वेयर की इस फ़िल्म *डेड पोएट्स सोसायटी* में अँग्रेज़ी के अध्यापक हैं जॉन किटिंग। वे अपनी कक्षा में एक कविता संकलन से छात्रों को अँग्रेज़ी कविता पढ़ा रहे हैं, जिसकी भूमिका 'अण्डरस्टैंडिंग पोएट्री' शीर्षक से विद्वान आलोचक डॉक्टर जे इवांस प्रिचर्ड ने लिखी है। वे कविता पढ़ाने के दौरान छात्रों को कविता समझाने वाली भूमिका के पन्ने फाड़कर फेंक देने को कहते हैं। इस भूमिका में यह बताया गया है कि कोई कविता कितनी महान है, यह कैसे तय करें। अध्यापक किटिंग अपने छात्रों को हिचकते देख उन्हें प्रोत्साहित करते हुए कहते हैं, "यह भूमिका कोई *बाइबिल* नहीं है, जिसके लिए तुम्हें नरक भोगना पड़ेगा। इसलिए आगे बढ़ो और फाड़ दो इन पन्नों को।" वे कहते हैं, "मुझे अपनी क्लास
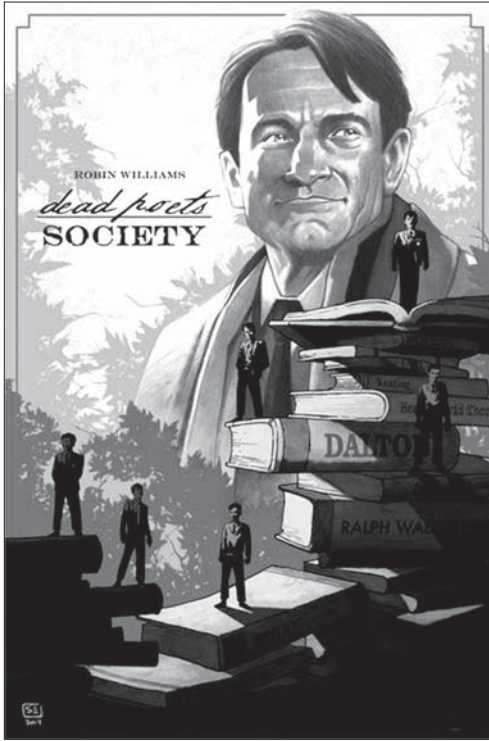
में एक और इवांस प्रिचर्ड नहीं चाहिए। तुम्हें ख़ुद से सोचने की कला सीखनी होगी। तुम्हें भाषा और अल्फ़ाज़ों का लुत्फ़ उठाना होगा। इससे कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता कि कोई क्या कहता है या फिर क्या समझता है।" वे अपने छात्रों से कहते हैं, "हम कविताएँ इसलिए नहीं पढ़ते और लिखते कि वे सुन्दर होती हैं। हम कविता पढ़ते और लिखते इसलिए हैं क्योंकि हम इंसानी समाज का हिस्सा हैं, और इंसानी समाज प्रबल मनोभावों से संचालित होता है।" आगे वे कहते हैं, "चिकित्सा, क़ानून, व्यापार या फिर इंजीनियरिंग, ये सब महान काम हैं और जीवन क़ायम रखने के लिए बेहद ज़रूरी भी। लेकिन कविता, सौन्दर्य व प्रेम ऐसी चीज़ें हैं जिनके लिए हम जीते हैं।" किटिंग अपने छात्रों को अमरीकी कवि वाल्ट व्हिटमैन की प्रसिद्ध कविता 'ओ मी! ओ लाइफ़!' की कुछ पंक्तियाँ सुनाते हैं और फिर कविता के सार के तौर पर छात्रों से पूछते हैं कि तुम्हारी कविता कहाँ है? तुम अपनी कविता, अपनी आवाज़ ढूँढ़ो। फ़िल्म के इस दृश्य को देखते हुए एक अन्य अमरीकी कवयित्री सिल्विया प्लाथ के मशहूर कथन की याद आती है, "मैं लिखती हूँ इसलिए क्योंकि मेरे भीतर एक आवाज़ है, जो हमेशा नहीं रहेगी।" किटिंग अपने छात्रों से शायद उसी आवाज़ को ढूँढ़ने या महसूसने की बात करते हैं। शिक्षा के व्यापक उद्देश्य भी शायद इसकी ही वकालत करते हैं कि आप अपने सवालों के जवाब ख़ुद से ढूँढ़ पाने और नए सवाल खड़े कर पाने में सक्षम हो पाएँ।

दरअसल फ़िल्म *डेड पोएट्स सोसायटी* में कविता के बहाने शिक्षा को लेकर दो नज़रियों के बीच के द्वन्द्व को दर्शाया गया है। फ़िल्म के दो दृश्यों में इस द्वन्द्व का फ़िल्मांकन बख़ूबी किया गया है। पहला नज़रिया फ़िल्म के शुरुआती दृश्य में ही दिखता है जो वेलटन स्कूल के मूल्य, परम्परा, सम्मान, अनुशासन और श्रेष्ठता, की वकालत करता है। इस दृश्य में स्कूल में दाख़िला लेने वाले नए छात्रों के स्वागत के लिए एक समारोह रखा गया है। इस समारोह में नए छात्र परम्परा, सम्मान, अनुशासन और श्रेष्ठता का ध्वज हाथ में लिए प्रवेश कर रहे हैं। स्कूल के हेडमास्टर नए छात्रों का स्वागत करते हुए स्कूल के उपरोक्त चार आदर्शों का उल्लेख गर्व के भाव से करते हैं। इसके साथ ही वे छात्रों को इनपर ख़रा उतरने का दबाव भी महसूस करा देते हैं। दूसरा नज़रिया फ़िल्म के उस दृश्य में दिखता है। जब नए अध्यापक किटिंग पहली बार छात्रों से रूबरू होते हैं, कक्षा लेने आते हैं। वे सीटी बजाते हुए कक्षा के पहले दरवाज़े से प्रवेश करते हैं और दूसरे से निकल जाते हैं। अब तक कक्षा में सख़्त अनुशासनात्मक अनुभव पाने वाले छात्रों के चेहरे पर विस्मय का भाव है। किटिंग बाहर निकलते हुए झाँककर छात्रों से अपने पीछे-पीछे कक्षा से बाहर निकलने को कहते हैं। छात्रों को लेकर वे स्कूल की उस गैलरी में पहुँचते हैं जहाँ पुराने छात्रों की तस्वीरें लगी हुई हैं। वहाँ पर वे वाल्ट व्हिटमैन की एक कविता 'ओ कैप्टन! माइ कैप्टन!' के बारे में छात्रों से पूछते हैं। यह कविता व्हिटमैन ने अब्राहम

लिंकन के लिए, उनकी मृत्यु पर लिखी थी। किटिंग छात्रों से मज़ाक़िया अन्दाज़ में कहते हैं कि वे चाहें तो थोड़ी हिम्मत दिखाकर उन्हें 'ओ कैप्टन! माइ कैप्टन!' कहकर सम्बोधित कर सकते हैं। आगे वे किताब के एक पन्ने पर लिखी हुई कविता की कुछ पंक्तियाँ अपने एक छात्र पीट्स को पढ़ने को कहते हैं। उस कविता में जो भावनाएँ पिरोई गई हैं, उनपर बात करते हुए वे एक लातीनी लफ़्ज़ 'कार्पे डिएम' का इस्तेमाल करते हैं। इसके मायने वे छात्रों से पूछते हैं। एक छात्र मिक्स, इस शब्द के मायने बताता है– सीज़ द डे। 'सीज़ द डे' अँग्रेज़ी की एक कहावत है। इसका मतलब होता है कल की फ़िक्र में डूबने की बजाय आज को, वर्तमान को अपनी क्षमता के अनुसार भरपूर जीना और वर्तमान के अवसरों का बेहतर इस्तेमाल करना। किटिंग इसके बाद पुराने छात्रों के चेहरों को ग़ौर से देखने को कहते हैं। वे छात्रों को इस बात का एहसास कराने की कोशिश करते हैं कि जीवन की आख़िरी परिणति उसके गुज़र जाने में ही है। इसलिए उसके गुज़रने से पहले उसे भरपूर जीते हुए अपनी ज़िन्दगी को असाधारण बनाओ। यहाँ जब किटिंग 'असाधारण' बोलते हैं तो उनका आशय कामयाबी के प्रचलित मापदण्डों के झण्डे गाड़ना से नहीं होता। वे प्रत्येक जीवन को ख़ुद में असाधारण मानते हैं और उसे अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ सुनकर पाने की बात कर रहे होते हैं। वे उस विशिष्टता को पहचानने की बात करते हैं, जो हर किसी में किसी-न-किसी रूप में मौजूद है। वे अपने छात्रों को अपने जवाब ख़ुद से खोजने के लिए प्रेरित करते हैं। इस फ़िल्म की मुख्य थीम यही है। लेकिन इस थीम को केन्द्र में रखते हुए भी फ़िल्म कई दूसरे पहलुओं, विद्रोह की प्रवृत्ति, अनुशासन, भय, स्वतंत्र अभिव्यक्ति,

स्वच्छन्दता, ज़िम्मेदारी, आदि, को भी समेटती चलती है।

फ़िल्म की कहानी अमरीका के एक रूढ़िवादी स्कूल वेलटन, के नए सत्र में छात्रों के आगमन और अँग्रेज़ी के नए शिक्षक जॉन किटिंग की नियुक्ति से शुरू होती है। किटिंग एक प्रयोगधर्मी शिक्षक हैं। वे ख़ुद भी वेलटन के छात्र रह चुके हैं और लंदन के एक मशहूर स्कूल में पढ़ाने का उनका अनुभव रहा है। स्कूल में आए नए छात्र वेलटन स्कूल की गौरवशाली परम्परा, उपलब्धियों और अनुशासन के बोझ से दबे हुए हैं। लेकिन वे अकेले में वेलटन को हेलटन कहते हुए स्कूल के चार आधार-स्तम्भ मूल्यों का मज़ाक़ उड़ाते हैं। फ़िल्म दिखाती है कि अत्यधिक सख़्त अनुशासन और नियंत्रण का माहौल इंसान में विद्रोह की भावना जागृत करता है। वेलटन में जहाँ दूसरे शिक्षक सालों से एक ही ढर्रे पर चलते हुए बच्चों को पढ़ाने का प्रयास कर रहे हैं, वहीं किटिंग अपनी पहली ही कक्षा से पढ़ाने के ग़ैर-परम्परागत तरीक़ों को अपनाते हैं। वे छात्रों के साथ मित्रवत व्यवहार कर उन्हें सहज अभिव्यक्ति के लिए प्रेरित करते हैं। स्कूल के दूसरे शिक्षकों को उनका यह व्यवहार थोड़ा अटपटा भी लगता है। लेकिन उनके छात्रों का डर जाता रहता है और वे ख़ुद को अभिव्यक्त करना शुरू कर देते हैं। यहाँ रवीन्द्रनाथ टैगोर की वह कविता याद आती है– 'जहाँ मन हो

भय से मुक्त और सिर फ़ख़्र से ऊँचा, जहाँ ज्ञान हो आज़ाद!'

टैगोर इस कविता में जिस तरह की परिस्थितियों की कामना करते हैं, कुछ वैसी ही उत्कण्ठा किटिंग के प्रयासों से वेलटन के छात्रों में पनपने लगती है। नए छात्रों का एक समूह स्कूल में 'डेड पोएट्स सोसायटी' नाम से एक पोएट्री क्लब की शुरुआत करता है जिसमें वे ख़ुद को अभिव्यक्त करते हैं। यहाँ वे अपनी रचनात्मकता को बिना किसी दबाव के गढ़ पाते हैं। वहाँ कोई यह नहीं तय करता है कि उनका गढ़ा कितना अनगढ़ है। यहाँ वे अपने मन की हसरतों-ख़्वाहिशों को खुलकर व्यक्त करते हैं और उनके लिए अपनी ज़िन्दगी में जगह बना पाते हैं। वे अपनी ज़िन्दगी से क्या चाहते हैं, किस काम में अपना सौ प्रतिशत दे सकते हैं, यहाँ वे इसका जवाब ढूँढ़ते हैं। लेकिन किटिंग इस दौरान स्वच्छन्दता की वकालत नहीं करते। उनका एक छात्र डाल्टन, स्कूल की पत्रिका में एक विवादास्पद लेख लिखता है और खुलेआम छात्र-शिक्षक सभा में उसकी वकालत करता है। इसके लिए उसे हेडमास्टर की ओर से शारीरिक दण्ड भी दिया जाता है। तब किटिंग, डाल्टन को समझाते हुए कहते हैं, "कब हमें दुस्साहस दिखाना है, कब सावधानी रखनी है, इसकी हमें समझ होनी चाहिए। समझदार व्यक्ति वह है, जिसे इसका पता होता है। अगर तुम्हें स्कूल से निकाल दिया जाता तो तुम बहुत कुछ खो देते और कहीं से भी यह तुम्हारे लिए ठीक नहीं होता।"

फ़िल्म का क्लाइमेक्स तब आता है जब किटिंग का एक छात्र नील, अपने पिता की मर्ज़ी के बिना अभिनय के अपने जुनून का पीछा करते-करते आत्महत्या कर लेता है। उसके पिता नील को डॉक्टर बनाना चाहते हैं जबकि नील ख़ुद को अभिनय के लिए ही बना हुआ पाता है। उसके पिता उसे वेलटन से निकाल किसी दूसरे स्कूल में डालने पर आमादा हो जाते हैं। पिता के इस फ़ैसले से दुखी नील अपनी ज़िन्दगी ख़त्म करने का अनुचित क़दम उठाता है। स्कूल प्रशासन की ओर से नील की मौत के लिए किटिंग को ज़िम्मेदार माना जाता है और किटिंग की भूमिका पर जाँच बैठाई जाती है। किटिंग के छात्रों पर दबाव डालकर, किटिंग की दोषपूर्ण भूमिका सिद्ध करने वाले दस्तावेज़ पर उनके हस्ताक्षर ले लिए जाते हैं।

किटिंग को स्कूल से निकाल दिया जाता है। स्कूल से जाते हुए किटिंग अपना सामान लेने आख़िरी बार कक्षा में जाते हैं। उस समय उनका एक छात्र टॉड, उनसे कहता है कि उन सभी से ज़बरन उनकी गुनाही साबित करने वाले दस्तावेज़ पर हस्ताक्षर लिए गए हैं। इसपर किटिंग हल्की मुस्कान के साथ कहते हैं कि उन्हें अपने छात्रों पर पूरा भरोसा है। इसके बाद कक्षा के सभी छात्र किटिंग के समर्थन में मेज़ पर खड़े हो जाते हैं जबकि स्कूल के हेडमास्टर उस वक़्त क्लास में मौजूद होते हैं।

वे चीख–चीख कर उन छात्रों को बैठने को कहते हैं, लेकिन छात्र उन्हें अनसुना कर देते हैं। फ़िल्म का यह दृश्य किटिंग के प्रयोगों और अपने छात्रों में विश्वास की जीत को दर्शाता है। सीखने–सिखाने को लेकर किटिंग के प्रयोगों की सबसे बड़ी कामयाबी यहीं दिखती है। उनके छात्र सही और ग़लत के बीच न सिर्फ़ फ़र्क़ करना सीख जाते हैं बल्कि बिना डरे उसके लिए खड़े होने का साहस भी जुटा पाते हैं। शायद यही शिक्षा की तमाम विधाओं, चाहे वह कविता हो या कहानी या निबन्ध, का व्यापक उद्‌देश्य भी है।

तारेंद्र किशोर का बीबीसी हिन्दी सेवा के साथ 5 सालों तक जुड़ाव रहा है। आप *राष्ट्रीय सहारा, प्रभात खबर, देशबन्धु, दैनिक जागरण* और *जनसत्ता* जैसे दैनिक समाचार-पत्रों में लेख लिखते रहे हैं। आपने वायर, न्यूज़लॉन्ड्री और सबरंग जैसी वेबसाइटों के लिए स्वतंत्र लेखन भी किया है। मार्च 2021 में फ़ेलोशिप कार्यक्रम के तहत अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में कार्य करना शुरू किया, आजकल हरिद्वार ज़िले में रिसोर्स पर्सन के तौर पर काम कर रहे हैं।

सम्पर्क : tarendra.kishore@azimpremjifoundation.org

कलाएँ हमें जीवन में नया नज़रिया देती हैं

शिक्षिका रश्मि गौड़ के साथ नरेश पंवार की बातचीत

नरेश : पढ़ाने-लिखाने का मामला हो, प्रधानाध्यापिका के तौर पर विभिन्न कामों को व्यवस्थित करने का, या नई विभागीय ज़िम्मेदारियों का मामला, आप निरन्तर सीख ही रही हैं। सीखने की यह प्रेरणा आपको कहाँ से मिलती है?

रश्मि : जब भी मैं किसी नई चीज़ को देखती हूँ, उसे सीखने के लिए मेरे भीतर बहुत जिज्ञासा पैदा हो जाती है कि ये चीज़ मुझे सीखनी ही चाहिए, ये काम मुझे आना ही चाहिए। स्कूल से बाहर अपनी निजी ज़िन्दगी में भी मैं ऐसे ही करती हूँ। जैसे– हारमोनियम और ढोलक बजाना, नए व्यंजन बनाना, आदि। मुझे शौक़ है कि नई-नई चीज़ें सीखूँ। स्कूल में मैं हेड टीचर की तरह काम करती हूँ। वहाँ हमेशा नए-नए तरह के काम आते रहते हैं, मसलन, ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन करना, बहुत सारे ऑनलाइन फ़ॉर्म्स भरना, आदि। ये सब काम हमें करने होते हैं। इस सबके लिए साइबर कैफ़े में जाने से वक्त ख़राब होता है। इसकी बजाय अगर हम इन कामों को ख़ुद सीख लें तो काम सुविधाजनक तरीक़े से हो जाता है। दूसरे, हमारे पास एक कौशल भी आ जाता है जो हम अपनी ज़िन्दगी में इस्तेमाल कर सकते हैं। हमारा काम आसान हो जाता है, और हम दूसरे पर निर्भर नहीं रहते हैं।

एक शिक्षक के रूप में हमको सीखते रहने की ज़रूरत है। हमारी पढ़ाई के ज़माने में पढ़ाई-लिखाई के तौर-तरीक़े, पाठ्यक्रम, सब अलग थे। आज हम अगर उसी तरह से काम करेंगे तो वह नहीं खपेगा। हमें पुराने ज़माने के लिहाज़ से नहीं, नए ज़माने और बच्चों के नए सन्दर्भों के लिहाज़ से काम करना होगा। बच्चों को नए ज़माने के कौशल सीखने हैं। मोबाइल

चलाना उनको बचपन से आता है, उसके आगे उनको कम्प्यूटर भी सीखना है। हम बच्चों को किलोबाइट, मेगाबाइट के ज़माने में सिर्फ़ अद्धा-पव्वा सिखाएँगे तो वे उनका वर्तमान परिप्रेक्ष्य में क्या इस्तेमाल करेंगे?

आने वाले समय में कुछ और गैजेट्स आ जाएँगे, कुछ नई विधियाँ आ जाएँगी, पाठ्यक्रम में बदलाव आ जाएँगे। इसलिए सीखना हमारी ज़रूरत भी है। जब हम नई-नई चीज़ें सीखते हैं, हमारे अन्दर एक जोश, एक ऊर्जा बनी रहती है। इससे हम भी बच्चों की तरह महसूस कर पाते हैं। जिस तरह बच्चे को नई चीज़ सीखने में ख़ुशी होती है, वैसे ही हमें भी होती है।

नरेश : आपने कहा कि बच्चों की ज़रूरत के नाते शिक्षक को सीखना पड़ता है। आपने इस सिलसिले में डांस क्लास और प्रार्थना सभा के लिए संगीत सीखने का भी ज़िक्र किया। आप इसकी प्रक्रिया हमें बताइए और यह भी कि और नया सीखने में क्या चुनौतियाँ आईं?

रश्मि : प्रार्थना अगर वाद्य यंत्रों के साथ हो तो उसका आनन्द ही कुछ और होता है। इसलिए मैं चाहती थी कि मेरे भी स्कूल में ऐसा हो। डाइट द्वारा संगीत पर एक कार्यशाला आयोजित की गई थी, मुझे उसमें भागीदारी का मौक़ा मिला। यह सुबह की सभा मुख्य रूप से प्रार्थना सभा पर केन्द्रित थी। हमने वहाँ वाद्य यंत्रों के साथ गाना सीखा और सात सुरों का अभ्यास किया। बाद में जितना वहाँ सीखा था, उसका रियाज़ करना शुरू किया। सवाल था कि आगे कैसे सीखें? सो, मैंने पहले तो किसी से थोड़ा-बहुत सीखा, फिर यूट्यूब, संगीत प्रवाह और संगीत सिखाने के एक ऐप के ज़रिए सीखा। अब मैं उसी पर रियाज़ करती हूँ, और एक-दो बार प्रैक्टिस करके गाना बजा लेती हूँ।

नरेश : यह सब आप बच्चों तक कैसे ले गईं?

रश्मि : मैंने स्कूल के लिए हारमोनियम ख़रीदा और बच्चों को सिखाया। बच्चे सीखना चाहते थे। बच्चों ने सुर सीखकर बजाना शुरू किया। ढोलक बजाने वाले एक भूतपूर्व विद्यार्थी, नीरज कान्त ने बच्चों को ढोलक सिखाई। एक बच्चे के अभिभावक, जो ढोलक बजाना जानते थे, ने भी मदद की।

नरेश : यह तो अच्छी बात हुई कि अभिभावक की प्रतिभागिता हो गई। उनकी क्या प्रतिक्रिया रही?

रश्मि : अभिभावक इससे ख़ुश होते हैं कि वे अपने बच्चों के स्कूल में कुछ योगदान दे पा रहे हैं। एक अभिभावक हारमोनियम बजाना जानते थे और एक ढोलक। मैंने उनसे कहा कि आप लोग बजाइए भी और बच्चों को सिखाइए भी। अभिभावक भी ख़ुश हुए। उन्होंने कहा कि हम लोग प्रोफ़ेशनली तो नहीं बजाते, लेकिन बच्चों को सिखा देंगे। वे इस बात से ख़ुश थे कि बच्चों में रुचि पैदा हुई है, और वे आगे अच्छे कलाकार हो सकते हैं।

नरेश : सर्वांगीण विकास के लिहाज़ आप से क्या सोचती हैं?

रश्मि : हमें बच्चों का सिर्फ़ पाठ्यक्रम ही पूरा नहीं करना है बल्कि उनके अन्दर मूल्यों और कौशलों का विकास भी करना है। इसके

लिए इस वर्ष हमने बच्चों के लिए ग्रीष्मकालीन क्रिएटिव होमवर्क और कुछ एक्टिविटीज़ रखी थीं। यह भी सोचा था कि अगर कोई बच्चा कोई स्किल सीखना चाहे, तो सीख सके। मसलन, वाद्य यंत्र बजाना, डांस करना, क्राफ़्ट बनाना, आदि। बच्चों ने सीखा भी। कुछ बच्चों ने डांस किया और उनके वीडियोज़ भी हमारे साथ यहाँ साझा किए। किसी ने ढोलक बजाई तो किसी ने क्राफ़्ट बनाया। कलाएँ तो सभी तरह की सीखनी चाहिए न! वे हमें जीवन में एक नया दृष्टिकोण देती हैं।

नरेश : कोविड के दौर में ऑनलाइन शिक्षण और प्रशिक्षण के लिए भी आप लोगों ने बहुत अच्छे तरीक़े से काम किया। उस दौर में तकनीकी तौर पर भी कई समस्याएँ थीं। आपने उन मुश्किलों का सामना कैसे किया?

रश्मि : शुरू-शुरू में हमने व्हाट्सएप का इस्तेमाल किया, पर वह बहुत काम नहीं आया। फिर फ़ाउण्डेशन ने ही टी-कॉन पर मीटिंग की, फिर ज़ूम आया। यह सब हमारे लिए नया था। इसके बाद टीम्स ऐप का इस्तेमाल किया गया। उसका लिंक बनाने में दिक़्क़तें आ रही थीं, तो हमने यूट्यूब से लिंक बनाना सीखा और बच्चों को सिखाया। बच्चों की सुविधा के लिए हमने स्क्रीन रिकॉर्डर से वीडियो भी बनाए। फ़ोन की मेमोरी कम होने के नाते ये वीडियो ठीक से चल नहीं पा रहे थे और इनके फ़ौंट भी साफ़ नहीं थे। फिर यूट्यूब चैनल का ख़याल आया। चैनल के लिए हमने पावरप्वॉइंट के ज़रिए वीडियो बनाए। उसमें फ़ौंट साफ़-साफ़ दिख रहे थे, पर वीडियो को और अच्छा करने के लिए अपने कम्प्यूटर में विंडोज़ 16 डलवाया। यह भी सीखा कि वीडियो में एनिमेशन कैसे डालते हैं। इस तरह कुछ अच्छे वीडियो बन गए। मैंने इस तरह कई चीज़ें सीखीं और अब भी सीख ही रही हूँ। मैंने बच्चों के लिए गूगल फ़ॉर्म भी बनाया।

नरेश : बहुत सारे विभागीय काग़ज़ी काम ऐसे होते हैं, जिन्हें कम्प्यूटर से करना आसान होता है। इस सिलसिले में आपका क्या अनुभव है?

रश्मि : मैंने ठीक से कम्प्यूटर नहीं सीखा था। मेरी बहन के पास कम्प्यूटर था, उसी ने शुरुआत में मुझे कुछ-कुछ सिखाया। कम्प्यूटर बन्द करना, खोलना, फ़ाइल बनाना, फ़ोल्डर बनाना, सेव करना, आदि उसी ने सिखाया। अपने बच्चे के लिए मैं उसी पर गाने, कार्टून

और वीडियो चलाती थी। एक दिन मैंने सोचा कि चलो, यही स्कूल के बच्चों के लिए भी करते हैं। उनको मज़ा आएगा। इस तरह मैंने एक मिनी लैपटॉप ख़रीदा, अतिरिक्त की-बोर्ड व माउस मँगवाया और बच्चों को लैपटॉप खोलना-बन्द करना, पेज प्रिंट करना, वर्ड फ़ाइल पर अपना और स्कूल का नाम टाइप करना, आदि सिखाया। काग़ज़ पर तो वे रोज़ ही लिखते थे, कम्प्यूटर पर लिखने में उनको मज़ा आया। उनकी दिलचस्पी बढ़ने लगी तो मैंने उन्हें कुछ वीडियो और पठन सामग्री भी दिखाई। इस प्रक्रिया में उन्होंने छोटी-छोटी प्रोजेक्ट फ़ाइलें बनाना सीख लिया।

आज स्कूल सम्बन्धी सारी जानकारी मेरे कम्प्यूटर में सेव है। जब भी कोई जानकारी माँगता है, मैं सीधे उसी से भेज देती हूँ। मेरी कैशबुक भी अब उसी पर बनी हुई है। इससे समय और काग़ज़ की भी बचत होती है।

नरेश : क्या बच्चों की भी कम्प्यूटर सीखने में रुचि बनी?

रश्मि : हाँ, कम्प्यूटर सीखने में बच्चे बहुत दिलचस्पी लेते हैं और अभिभावक भी बहुत ख़ुश होते हैं। उनको लगता है कि उनके बच्चे नई तकनीकी सीख पा रहे हैं।

नरेश : पढ़ने की आदत को लेकर आप क्या सोचती हैं? अपनी रुचि के बारे में बताए?

रश्मि : किताबें पढ़ते तो हम पहले भी थे पर शिक्षा पर कम किताबें पढ़ी थीं। पहले तो बहुत सारे उपन्यास पढ़े, प्रेमचंद को पढ़ा, *चित्रलेखा* पढ़ी। मेरे पापाजी को भी पढ़ने का शौक़ था। इसलिए हमारे घर में बहुत सारी अलग-अलग धर्मों की किताबें भी थीं, मैंने उन्हें भी पढ़ा। पढ़ने में इंटरेस्ट तो था ही। इंग्लिश के कुछ नॉवेल, ड्रामा वग़ैरह भी पढ़े। पेरेंटिंग पर भी एक किताब पढ़ी। मतलब, शौक़िया पढ़ते थे। हमारे व्यक्तित्व विकास से उनका सम्बन्ध हो सकता है लेकिन वे हमारे पेशे से सम्बन्धित नहीं थीं।

मेरे घर पर एक किताब थी जॉन हाल्ट की, *बच्चे असफल क्यों होते हैं।* मैंने उसे पढ़ा। उसमें एक तरह का नया दृष्टिकोण मिला। बच्चों के बारे में हम इस तरीक़े से, संवेदनशील तरीक़े से, नहीं सोचते थे। हम जिस तरीक़े से पढ़कर आए थे, उसमें हमारा फ़ोकस कंटेन्ट डिलीवर करने पर होता था। बच्चा क्या सोच रहा है, इसपर हम कम ही ध्यान देते थे। यह किताब पढ़कर मुझे लगा कि हमें बच्चों के बारे में इससे ज़्यादा सोचना चाहिए।

चूँकि मैं वर्कशॉप वग़ैरह में फ़ाउण्डेशन जाती रहती थी, वहाँ के पुस्तकालय में कठैतजी ने मुझे जॉन हाल्ट की बहुत-सी किताबें दिखाईं। वहीं से *असफल स्कूल* किताब ले आई। पढ़कर सोचा कि हाँ, हमें शिक्षक के रूप में और सोचने की ज़रूरत है। उसके बाद *मैंने दिवास्वप्न, मेरी ग्रामीण शाला की डायरी* पढ़ी, *तोत्तोचान* और *समर हिल* पढ़ी। किताब पढ़कर मैंने जाना कि बच्चों की साइकोलॉजी कैसी होती है, मेमोरी कैसी होती है। हम एक भावनात्मक पक्ष देख रहे होते हैं तो उसके साथ-साथ हमें वह पक्ष भी तो देखना है कि हमारा शरीर, दिमाग़ किस तरह से काम करता है। हम बच्चे की प्रतिक्रिया,

उसके व्यवहार, आदि को ज़्यादा बेहतर तरीक़े से समझ पाएँगे। हम समझ पाएँगे कि बच्चा कोई काम क्यों कर रहा है।

स्कूल में हमने पढ़ने-लिखने की श्रृंखला शुरू की, 'किताबों के पन्ने जो हमने पलटे' नाम से। उसमें कुछ लोग किताबें पढ़ते थे और शेयर करते थे, बाक़ी लोग सुनते थे। इस श्रृंखला में सन्दर्भ मैं ही रखती थी। उसका मुझे इतना फ़ायदा हुआ कि वहाँ जो भी पेपर पढ़ा जाता था, उसको मैं भी पढ़ती ही थी। हर पेपर या तो सीधे हमारे क्लासरूम से जुड़ा होता था या फिर शिक्षा या समाज से। इस प्रक्रिया में मैंने बहुत कुछ सीखा और किताबों के प्रति मेरा रुझान और बढ़ा।

नरेश : पढ़ने के साथ-साथ आप लिखती भी हैं?

रश्मि : लिखने का काम तो मैंने कम ही किया। हालाँकि, कुछ अनुभव लिखे हैं मैंने। कोविड के दौरान फ़ाउण्डेशन के साथ शुरुआती भाषा और गणित पर जो काम किया था, उसका दस्तावेज़ लिखा। उसे डाइट ने प्रकाशित किया। मेरी एक एक्शन रिसर्च डाइट से प्रकाशित होने वाली है। इसी तरीक़े से मैंने काम से जुड़ा हुआ ही लिखा है।

नरेश : आपके पुस्तकालय से बच्चे तो पढ़ते ही हैं, अभिभावक भी पढ़ते हैं। ये नई बात है।

रश्मि : हाँ, अभिभावक और बच्चे सभी किताबें पढ़ने के लिए आते हैं। अभी डीएलएड वाले स्टूडेंट भी ले गए किताबें। उन्होंने जब हमारा पुस्तकालय देखा तो पूछा कि आप लोग इसे कैसे व्यवस्थित करते हैं, क्या हम भी ले सकते हैं किताबें? हमने कहा कि हाँ, बिलकुल ले जाइए।

नरेश : अभी कोविड के बाद जिस तरह का माहौल है, ज़्यादातर लोग यही कह रहे हैं कि इस बार बच्चों को वर्तमान ग्रेड पर लाना है। इसके लिए आप लोग स्कूल में क्या नया कर रहे हैं?

रश्मि : कोविड के बाद जब स्कूल खुले तो हमने इसकी प्रक्रिया शुरू की। जिन बच्चों का कुछ छूट गया था या गैप बन गया था, उसपर हमने काम करना शुरू किया। हमने शुरू में ही नए ढंग से ग्रुप बना दिए थे। दूसरे, एक रीडिंग ऑवर भी बच्चों के लिए रखा, ताकि पढ़ने-लिखने का माहौल बने। तीसरे, हम बाल-गीत जैसी कुछ नई गतिविधियाँ भी कर रहे हैं। मैं ख़ुद भी कर रही हूँ और बच्चे भी कर रहे हैं। इनमें बच्चों की बहुत दिलचस्पी है। नए गीत उनके भाषाई कौशल और विकास के लिए ज़रूरी भी हैं। शिक्षक पढ़ाई-लिखाई को गतिविधि-आधारित बना रहे हैं ताकि बच्चों को रुचिकर लगे। जब हम सुबह-सुबह गतिविधियाँ करते हैं तो बच्चे फ़्रैंक हो जाते हैं, उनकी झिझक दूर हो जाती है और वे दिनभर जोश में रहते हैं। बच्चों को लेजिम सिखाना भी शुरू किया है। एक लड़की, जो हमारी ही विद्यार्थी रही है, बच्चों को डांस के कुछ स्टेप्स सिखाती है। बच्चे जब कुछ गतिविधि करते हैं तो उनमें जोश आता है, और यह उनकी पढ़ाई में भी दिखता है। इनके पिछले साल बहुत बोरिंग गुज़रे हैं, इसलिए अगर हम उनकी रुचि का काम उन्हें न दें तो मामला बोझिल

ही रह जाएगा। गतिविधियाँ कराने के बाद उपस्थिति भी बढ़ जाती है।

नरेश : इस साल नई गतिविधियाँ और पढ़ाई-लिखाई साथ-साथ चलेंगी। अभिव्यक्ति जैसे कौशल के लिए आप क्या प्रयास करती हैं?

रश्मि : स्कूल में बच्चों के अन्दर झिझक बहुत थी तो मैंने 'अपना मंच' नाम से एक गतिविधि शुरू की। विद्यार्थियों के लिए एक अभिभावक से कहकर एक डायस बनवाया था। उसपर लिख दिया– 'मेरा अपना मंच'। हम उसपर एक माइक रख देते थे। शुरू में बच्चों को ये नहीं बोला कि इसमें क्या बोलना है। मैंने कहा कि बच्चो! मैं आज आपसे कुछ बोलना चाहती हूँ। आप भी अगर कुछ भी बोलना चाहते हों तो बोल सकते हैं। शुरू-शुरू में कुछ आत्मविश्वासी बच्चे आते थे और बोलकर चले जाते थे। फिर मैं कुछ देर के लिए कक्षा से बाहर चली जाती, तब वे बच्चे भी उठते जो कभी नहीं बोलते थे। इनको उठाना ही हमारा टारगेट था। एक दिन मैंने उस बच्चे की आवाज़ सुनी जो कक्षा में कभी नहीं बोलता था।

कहने का तात्पर्य यह है कि पहले बच्चे चुपके-चुपके ही बोले। फिर हमने उनसे कहा कि उन्हें छूट है, वे कुछ भी बोल सकते हैं। किसी फ़िल्म का डायलॉग, कविता, या जो भी बात उनके मन में आ रही हो, वह बोल सकते हैं। धीरे-धीरे इस गतिविधि को हम प्रार्थना में ले आए। प्रार्थना में जब बच्चे अपनी प्रस्तुति देते या अपनी दिनचर्या के काम के बारे में डायस पर आकर बोलते हैं, उनका एक अलग ही आत्मविश्वास होता है। शिक्षकों को डायस से बोलते देखकर बच्चों के मन में भी आता है कि वे भी डायस से बोलें।

नरेश : ये जो सारी गतिविधियाँ आप स्कूल में कराती हैं, उनसे बच्चे के अन्दर कुछ मूल्य जा रहे होते हैं, चाहे सैद्धान्तिक हों या शैक्षिक।

रश्मि : प्रार्थना में ऐसा नहीं है कि कोई एक ही बच्चा बोलेगा या कुछ बच्चे ही बोलेंगे। ऐसा

नहीं होगा कि सिर्फ़ एक-दो होशियार बच्चों को ही बुलाएँ। हमारे यहाँ पहले जो अपने-आप आना चाह रहा है वो आएगा, फिर हम बुलाते हैं कि आज कौन आएगा। बच्चे भी उत्साहित करते हैं कि आज ये आएगा। धीरे-धीरे लगभग सारे बच्चों को मौक़ा मिल जाता है। दूसरी चीज़ यह कि अगर बच्चे को समाचार बोलना है, और वह नहीं बोल पाया तो हम कहते हैं कि जो आ रहा है वही बोलो। इससे उसकी अभिव्यक्ति होती है, और दूसरे बच्चे जब ताली बजाते हैं तो उसका आत्मविश्वास भी बढ़ता है। बच्चा इस प्रक्रिया में सीखता भी है। अगर कोई बच्चा 'वर्ड ऑफ़ द डे' में कोई शब्द बोलना चाहता है, और नहीं बोल पा रहा है, तो हम उसको एक किताब देते हैं या स्पेलिंग बता देते हैं। अगर कोई बच्चा नहीं बोल पा रहा है तो बाक़ी बच्चे उसके साथ में स्पेलिंग बोलकर उसका सपोर्ट करते हैं। जब हम खेल की टीम बनाते हैं या कोई और गतिविधि कराते हैं, तब उन्हीं से पूछते हैं कि बताओ, कौन टीम लीडर बनेगा? टीम लीडर भी हर बार अलग-अलग होता है। टीम लीडर की मर्ज़ी से उसकी टीम बनती है। उसे बताया जाता है कि टीम से, समूह भावना से ही आप जीत सकते हैं।

नरेश : बच्चों में मूल्य निर्माण के लिए पुस्तकालय कैसे मदद करते हैं?

रश्मि : हर कहानी में कुछ-न-कुछ मूल्य छुपे रहते हैं। अगर हम उस कहानी को बच्चों को अच्छे-से डिलीवर कर सकें, तो मूल्यों की डिलीवरी अपने-आप हो जाती है। मसलन, गाँधीजी की जीवनी या सत्यवादी हरिश्चंद्र पढ़ें तो बिना बताए यह मूल्य पता चल जाता है कि सत्य बोलना चाहिए। बच्चे पात्रों के चरित्र से प्रभावित होते हैं। वे घटनाओं से ख़ुद को जोड़ते हैं, और उनसे सीखते भी हैं।

नरेश : आपसे बातचीत करते हुए लगा कि शायद जातिगत भेदभाव तो आपके यहाँ नहीं होता है?

रश्मि : जाति का भेदभाव हमारे यहाँ नहीं है। हमारे यहाँ बहुत-से बच्चे एससी कैटेगरी से आते हैं, सवर्ण भी हैं, नेपाली भी, ओबीसी और मुसलमान भी। हमारे यहाँ आप पता ही नहीं लगा पाओगे कि कौन किस जाति का है। लेकिन कभी-कभी विभागीय सूचनाओं के लिए बताना-पूछना पड़ता है। जैसे– परसों की ही बात है, अभी कुछ बच्चों के जाति प्रमाण-पत्र नहीं मिले थे। मैंने उनके अभिभावकों को बोल दिया था पर बच्चे नहीं लाए थे। मैंने बच्चों को बोला कि बच्चो, आपकी मम्मी से बात हुई थी, सर्टिफ़िकेट के लिए। सर्टिफ़िकेट जमा करो, ऑनलाइन रजिस्ट्रेशन करना है। एक सवर्ण लड़की ने पूछा कि मैम, क्या मुझे भी लाना है? मैंने कहा, नहीं। तो वह पूछने लगी कि क्यों, मेरे सर्टिफ़िकेट की ज़रूरत क्यों नहीं? ऐसे में ऑकवर्ड स्थिति भी आ जाती है। मैंने इस बच्ची को समझाया कि जिन लोगों से सर्टिफ़िकेट माँगा है, उनका एक फ़ॉर्म भरेगा। मैंने बताया कि वे एससी कैटेगरी से हैं। उसने पूछा कि एससी क्या होता है? मैंने सरनेम के सहारे समझाने की कोशिश तो की, पर उसके चेहरे पर प्रश्नचिह्न बना रहा। अब उसे मैं कैसे बोलती कि वह बच्चा अलग वर्ग का है, जबकि सारे बच्चे साथ-साथ खेलते, रहते हैं।

नरेश : आपकी नज़र में शिक्षक कैसा होना चाहिए?

रश्मि : हम अच्छे शिक्षक तब ही हो पाते हैं जब ख़ुद भी सीखते रहें। विकास कभी भी पीछे की ओर नहीं चलता। हमेशा नई तकनीकी और नई-नई चीज़ें आती ही रहेंगी। इसलिए मेरे हिसाब से, शिक्षक को हमेशा सीखते ही रहना चाहिए। हमें देखकर बच्चे भी नई चीज़ों को सीखना शुरू करते हैं। वे हमसे प्रभावित भी होते हैं, और हमें ख़ुद के व्यक्तित्व में ढालने की कोशिश करते हैं।

जो हमें पढ़ाना है, उसका ज्ञान तो होना ही चाहिए। मसलन, मुझे तो सारे ही विषय पढ़ाने हैं और कहीं पर मुझे कमी लग रही है तो उसके लिए बहुत सारे साधन हैं, किताबें हैं, नेट पर सामग्री है, और साथियों से भी पूछा जा सकता है। हमें कम-से-कम बच्चों के प्रश्नों को तो पूरा करना ही चाहिए।

दूसरी चीज़ जो एक शिक्षक के लिए ज़रूरी है, वह है 'चाइल्ड साइकोलॉजी'। बच्चे क्या सोच रहे हैं, कैसे सोचते हैं, उनकी की गई ग़लतियों के कारण को समझना, सीखने में बाधा पहुँचा रही चीज़ों, आदि को हमें जानना चाहिए। हमें प्रयास करना चाहिए कि बच्चा स्वाभाविक रूप से सीख पाए।

एक शिक्षक को संवेदनशील होने के साथ-साथ समाज के प्रति भी जागरूक होना चाहिए। अगर वैल्यूज़ हम ख़ुद नहीं मानेंगे तो वो बच्चों में भी नहीं आएँगी। मैंने कई बार बच्चों से सुना है कि अरे यार! हमारे लिए ही ग़लत है, बड़ों के लिए ये सही है। ये दोनों तरह की वैल्यूज़ हैं। एक हम दिखा रहे हैं और एक सिखा रहे हैं। ये ग़लत है। जो हम सिखा रहे हैं, वह हमें भी करके दिखाना होगा। बच्चे हमारे भाव समझते हैं। हमें कोशिश यही करनी चाहिए कि बच्चों को हम जो बनाना चाहते हैं, वह अपने अन्दर भी जिएँ।

नरेश : स्कूल में बच्चों के काम करने को पेरेंट्स किस तरह देखते हैं? बच्चों की देखभाल और शिक्षकों के साथ उनके सम्बन्धों के किस तरह के अनुभव हैं आपके?

रश्मि : कई बार स्कूल में कुछ अभिभावक कहते हैं कि बच्चों से सफ़ाई नहीं करानी है। हम कहते हैं कि बच्चे सफ़ाई कहाँ कर रहे हैं, वो तो हमारे साथ सहयोग कर रहे हैं। फिर पूछते हैं कि अच्छा, आप ये बताओ कि बच्चे घर में काम करते हैं या नहीं? उनके पास कोई जवाब नहीं होता, क्योंकि घर में तो वे काम करते ही हैं। मैंने कहा कि जिस हक़ से आप घर में कहते हैं उसी हक़ से हम स्कूल में भी कहते हैं। हम यह भी देखते हैं कि किस बच्चे को कैसी भूमिका दी जाए। ऐसा नहीं है कि हम पहली कक्षा के बच्चों को टॉयलेट साफ़ करने के लिए बोलेंगे। कक्षा 1 और 2 के बच्चे हमारे पास आते हैं कि मैमजी, मुझे टॉयलेट जाना है, हमारी बेल्ट खोल दो, हमारे पैंट का हुक खोल दो। फिर वे अपने कपड़े लेकर हमारे पास आते हैं, और हम चेंज करते हैं।

एक बार हमारे यहाँ टीकाकरण हुआ तो इंजेक्शन लगे थे। हमारे बच्चे डर गए तो हमने गोद में पकड़-पकड़ कर उनको इंजेक्शन लगवाए। सरकारी स्कूल में बच्चों के साथ शिक्षकों के ख़ूब अच्छे रिलेशंस हैं। हमारे यहाँ अधिकांश महिलाएँ हैं, और मुझे लगता है महिलाएँ वैसे भी थोड़ी केयरिंग होती हैं, तो अच्छा माहौल रहता है। बच्चे भी सब खुलकर बात कर पाते हैं। वे हमपर विश्वास करते हैं।

रश्मि गौड़ 26 वर्षों से प्राथमिक कक्षाओं में शिक्षण कार्य कर रही हैं। आपने प्राथमिक कक्षाओं में सभी विषयों में शिक्षण कार्य किया है। वर्तमान में राजकीय आदर्श प्राथमिक विद्यालय श्रीकोट गंगानाली, पौड़ी गढ़वाल में प्रधानाध्यापिका के पद पर कार्यरत हैं। यहाँ गणित विषय के साथ अँग्रेज़ी व हिन्दी विषय भी पढ़ाती हैं। उनकी कोशिश रहती है कि बच्चों में अवधारणात्मक समझ विकसित हो और सीखना उनके लिए एक रुचिकर व सहज प्रक्रिया हो। रश्मि को किताबें पढ़ना अच्छा लगता है। वे अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन द्वारा आयोजित कार्यशालाओं व विचार विमर्श में भी भाग लेती रहती हैं।
सम्पर्क : gaurrashmik.rg@gmail.com

नरेश पंवार अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन में पिछले 7 सालों से गणित विषय में कार्य कर रहे हैं। वर्तमान में वे श्रीनगर, पौड़ी गढ़वाल में कार्यरत हैं। इससे पहले वे पर्यावरण विद्यालय अंजनीसैंण, श्री भुवनेश्वरी महिला आश्रम, टिहरी गढ़वाल में शिक्षण कार्य कर रहे थे। वहाँ उन्होंने 8 साल प्रारम्भिक स्तर के बच्चों के साथ कार्य किया है। उनकी रुचि सीखने-सिखाने की नवाचारी शिक्षण विधियों में है।
सम्पर्क : naresh.panwar@azimpremjifoundation.org

क्या सामाजिक अध्ययन सिर्फ़ रटने का विषय है ?

इस संवाद में सामाजिक अध्ययन शिक्षण से जुड़े विभिन्न मुद्दे सामने आए। बातचीत में ज़ोर किया गया कि यह याद करने का विषय नहीं है। कुछ ऐतिहासिक कारणों और मौजूदा परीक्षा प्रणाली की वजह से यह धारणा बन गई है, लेकिन इस धारणा से जूझने की ज़रूरत है। यह भी सामने आया कि सामाजिक अध्ययन में कई मुद्दे काफ़ी जटिल होते हैं, लेकिन विवेकशील और आलोचनात्मक चिन्तन विकसित करने, विवेकशील नागरिक बनाने के लिए इन मुद्दों पर कक्षा में चर्चा होनी ज़रूरी है। इस संवाद में शामिल थे– अरविंद सरदाना, एकलव्य, भोपाल से; नवीन और दीपक कुमार राय, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन से; महेश पुनेठा, उत्तराखंड से और नरेन्द्र परबत, छत्तीसगढ़ से। सं.

रजनी : यह एक आम धारणा है कि सामाजिक अध्ययन, जिसमें इतिहास, राजनीतिशास्त्र, भूगोल, अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र आदि शामिल हैं, एक रटने वाला विषय है। यह भी कि इसमें बस पढ़ना और याद करना है, कुछ ख़ास समझने के लिए नहीं है।

नवीन : सामाजिक अध्ययन बहुत-सी जानकारियों और सूचनाओं पर आधारित है, लेकिन यह उन जानकारियों और सूचनाओं से आगे बढ़कर विश्लेषण की माँग करता है, लेकिन कक्षाओं में विश्लेषण के कौशल पर काम बिलकुल नहीं होता है। मुझे इसके बहुत-से ऐतिहासिक कारण भी लगते हैं। ऐतिहासिक कारण यह है कि सामाजिक अध्ययन विषय को शुरुआत में नेशन बिल्डिंग के साधन के रूप में समझा गया। इसमें सभी नागरिकों को प्रशिक्षित करने की बात कुछ ज़्यादा हावी थी। यूरोप के सन्दर्भ में भी सिटीज़नशिप एजुकेशन की संरचना इसी से निकलकर आई कि नागरिक को मूल्यों के आधार पर शिक्षित करना है। शुरुआत में इसीलिए याद करने पर ज़ोर था क्योंकि विद्यार्थियों को यह बताना था कि सूचनाएँ एक जैसी हैं, उन्हें ज़्यादा सोचने नहीं देना था, उन्हें प्रश्न नहीं करने देना था। सामाजिक अध्ययन को स्कूल में जिस नज़रिए से लाया गया, आज भी उस नज़रिए से हम पूरी तरह से मुक्त नहीं हो पाए हैं जिसके कारण कक्षा में सूचनाओं अम्बार रहता है।

दूसरा नज़रिया शिक्षकों को लेकर है। हमारे स्कूलों में जो शिक्षक सामाजिक अध्ययन पढ़ाते हैं वो उस रूप में प्रशिक्षित नहीं हैं। उन्होंने अपने स्कूल के दौर में इस विषय को जैसे पढ़ा, वो उसको उसी रूप में लेते हैं। वे समझते हैं कि यह विषय याद करने के लिए ही है, और सूचनाओं को याद करके लिख लेना ही महत्त्वपूर्ण होता है। इसलिए कई बार स्कूलों में किसी भी शिक्षक से इस विषय को पढ़ाने के लिए कह दिया जाता है। हाल ही में, मैंने कई स्कूलों में देखा कि पीटीआई शिक्षक सामाजिक अध्ययन पढ़ा रहे हैं। वे कुछ पैराग्राफ़ बच्चों को पढ़ने को देते हैं, कुछ पंक्तियाँ जोड़ते हैं, नहीं तो आगे बढ़ जाते हैं और प्रश्नोत्तर करा देते हैं।

रजनी : महेशजी, आप अपनी बात रखें।

महेश : मैं नवीनजी से सहमत हूँ। मुझे लगता है कि रटना दरअसल इस एक विषय तक ही सीमित नहीं है। हमारी पूरी शिक्षा पद्धति ही परीक्षा-केन्द्रित हो गई है। परीक्षाओं का पूरा ढाँचा केवल रटने की क्षमताओं के मूल्यांकन तक सीमित हो गया है और सामाजिक अध्ययन भी इससे अछूता नहीं है। किस बच्चे को कितनी जानकारी, सूचनाएँ व तथ्य याद हैं, सिर्फ़ यही जानने के लिए ही परीक्षा होती है। इसके चलते पढ़ाने वाले कक्षा में वही चीज़ें पढ़ाते हैं जो परीक्षा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण होती हैं। एक बात और, केवल शिक्षकों को ही नहीं बल्कि शिक्षा से जुड़े अधिकारियों, अभिभावकों, आदि किसी को भी अब तक ये समझ में नहीं आया कि सामाजिक अध्ययन पढ़ाने का मुख्य उद्देश्य क्या है? क्यों सामाजिक अध्ययन को पाठ्यचर्या में शामिल किया गया है? आख़िर इसकी दक्षताएँ क्या निर्धारित की गई हैं? क्या मूल्य निर्धारित किए गए हैं? सभी लोग यही मानते हैं कि सामाजिक अध्ययन इसलिए पढ़ाया जाना चाहिए क्योंकि प्रतियोगी परीक्षाओं में सामाजिक अध्ययन से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। जिस आलोचनात्मक विवेक के बारे में हम बात कर रहे हैं, उसका परीक्षण किया ही नहीं जाता है। मैं समझता हूँ कि एक समाज, एक ज़िम्मेदार नागरिक के मूल्य इस विषय के द्वारा विकसित होने चाहिए थे। मेरा मानना है कि संवेदना, समझदारी और ज़िम्मेदारी, इन तीनों मूल्यों को हम आने वाली पीढ़ी के अन्दर पैदा कर सकें इसलिए इस विषय को शामिल किया गया है।

रजनी : अरविंदजी, इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, इन सबको हम सामाजिक अध्ययन कहते हैं। इन विभिन्न विषयों में क्या सिमिलैरिटी है और क्या बुनियादी फ़र्क़ है?

अरविंद : अभी जो बातें हुई हैं, पहले दो-चार चीज़ें उनपर कहना चाहूँगा। दो-तीन तरह के द्वन्द्व हैं। एक द्वन्द्व है कि हम इस विषय को नेशन बिल्डिंग के लिए पढ़ाते हैं। दूसरा, इससे संवेदना, ज़िम्मेदारी, माने अच्छे नागरिक, के मूल्य विकसित होते हैं। सामाजिक अध्ययन से आप बहुत कुछ संवेदना और ज़िम्मेदारी की बातें ला सकते हैं, समझा सकते हैं, पर उनको इसका तंत्र मानना या नैतिक शिक्षा का स्वरूप मानना, ये हमारे स्कूली पाठ्यक्रम की एक खाई है। हम सब जानते हैं कि नैतिक शिक्षा किसी भी पाठ्यचर्या से न आकर व्यवहार से ही ज़्यादा आती है। यदि इसे नैतिक शिक्षा मानेंगे तो इसमें केवल अच्छी बातें करना चाहेंगे। इसमें आलोचना या विश्लेषण शामिल करना नहीं चाहेंगे। इस प्रकार, कक्षा में किसी भी तरह की आलोचना,

लड़के और लड़की में भेदभाव

समाज में लड़के और लड़कियों में कई तरह से भेदभाव किया जाता है। हम सभी इस भेदभाव से परिचित हैं। एक लड़का या लड़की होने का अर्थ क्या होता है? आपमें से कई लोग कहेंगे, "हम लड़के या लड़की की तरह जन्म लेते हैं। यह तो ऐसे ही होता है। इसमें सोचने वाली क्या बात है?" आइए, देखें कि क्या सच्चाई यही है?

नीचे दिए गए कथनों की सूची में से तालिका को भरिए। अपने उत्तर के कारणों पर चर्चा कीजिए।

वे बहुत ही सुशील हैं।
उनका बात करने का तरीका बड़ा सौम्य और मधुर है।
वे शारीरिक रूप से बलिष्ठ हैं।

चित्र 1

द्वन्द्व या कोंफ़्लिक्ट सब हट जाएँगे। अतः इसपर थोड़ा ध्यान देने की ज़रूरत है। दूसरी बात है कि उन्होंने सही कहा कि परीक्षा का एक तरह का ढर्रा बन गया है। सभी लोग सोचते हैं कि परीक्षा जनरल नॉलेज का विषय है, और उसमें सूचनाएँ ही पूछी जाएँगी। और आगे चलकर यह फ़ायदेमन्द भी होगा। इसलिए इस विषय को जनरल नॉलेज की एक गाइड मान लिया जाता है, और पूरी परीक्षा प्रणाली इसपर टिकी हुई है।

लेकिन हर विषय की अपनी अवधारणा होती है। इतिहास, भूगोल, नागरिकशास्त्र, सभी का अपना एक इतिहास है, अपना एक तरीक़ा है, लेकिन इस बारे में बात नहीं होती है।

नवीन : कुछ उदाहरण साझा करना चाहूँगा। राज्य स्तर पर जब सामाजिक अध्ययन का पाठ्यक्रम बन रहा था, मैं भी उस फ़ोकस समूह में था। उसमें राज्यभर से चयनित शिक्षक आए थे। इस समूह की एक शिक्षिका का कहना था कि एनसीईआरटी की कक्षा 6 की पाठ्यपुस्तक में ‘विविधता और भेदभाव’ पाठ में दी गई अम्बेडकर की कहानी बहुत ही विवादास्पद है।

विविधता एवं भेदभाव

पिछले पाठ में आपने विविधता के बारे में पढ़ा। कई बार जो लोग दूसरों से अलग होते हैं उन्हें चिढ़ाया जाता है, उनका मज़ाक उड़ाया जाता है या फिर उन्हें कई गतिविधियों या समूहों में शामिल नहीं किया जाता। अगर हमारे दोस्त या दूसरे लोग हमारे साथ ऐसा व्यवहार करें तो हमें दुख होता है, गुस्सा आता है और हम असहाय महसूस करते हैं। क्या आपने कभी सोचा है कि ऐसा क्यों होता है?

इस पाठ में हम यह समझने की कोशिश करेंगे कि ऐसे अनुभव हमारे समाज से और हमारे आस-पास मौजूद असमानताओं से कैसे जुड़े हुए हैं।

चित्र 2

उन्होंने कहा कि वे उसे कभी नहीं पढ़ातीं, क्योंकि इसे पढ़ाना कक्षा के वातावरण को ख़राब कर देता है। माने बच्चों के बीच बातचीत हो, उनको विश्लेषण के मौक़े मिलें, ऐसा हम नहीं चाहते। सोच यही है कि नैतिक मूल्य पढ़ा दें, लेकिन बराबरी और भेदभाव की बात से बचें। हाल ही का एक और अवलोकन है। हर साल हमारे यहाँ विश्वविद्यालय के विद्यार्थी कक्षा अनुभव के लिए आते हैं। अभी हाल ही में भी वे आए और पढ़ा रहे थे। उन्होंने जातिगत भेदभाव के मुद्दे पर बच्चों से चर्चा की और कुछ गतिविधियाँ कीं। बच्चों के साथ हुई इस चर्चा से पूरा स्कूल सिस्टम हिल गया। काना-फूसी हुई और शिक्षकों ने विश्वविद्यालय के इन विद्यार्थियों को इस तरह के मुद्दों पर कक्षा में बातचीत करने से मना कर दिया। उनका कहना था कि इन मुद्दों पर चर्चा करना हम उचित नहीं समझते, क्योंकि इनसे सामाजिक वैमनस्य फैलता है। और वैसे भी हम ‘जात-पात’ को नहीं मानते। यह हमारे समाज में मौजूद चुनौतियों से मुँह चुराना है। इस तरह की चुनौतियाँ भी ज़मीनी स्तर पर काफ़ी दिखाई देती हैं। शिक्षक अपनी ही पाठ्यचर्या शुरू कर देते हैं, और आगे बढ़ने की प्रक्रिया को रोक देते हैं।

नरेन्द्र : जो बात रखी गई है, उसी सन्दर्भ में एक घटना बताना चाहूँगा। हमारे एक बड़े अधिकारी ने एक बैठक में कहा कि कला के विषय, मैं किसी से भी पढ़वा लूँगा। मैंने सवाल किया था कि ऐसा कैसे हो सकता है कि अर्थशास्त्र वाला भूगोल की प्रकृति को समझ जाए और भूगोल वाला अर्थशास्त्र की। इतिहास और राजनीति तो ख़ैर फिर भी जुड़ते हैं। लेकिन बाक़ी सबकी प्रकृति अलग है। उन्होंने कहा, ये कोई बड़ी बात नहीं है। इन विषयों में जो तथ्य दिए होते हैं उनकी व्याख्या कोई भी कर लेगा। कई स्कूलों की विजिट में भी यह समस्या दिखी। छत्तीसगढ़ में 9वीं और 10वीं की पाठ्यपुस्तक बनाते वक़्त रोज़ अनुभव होने वाले कई ज्वलन्त मसलों को पाठ्यपुस्तक में शामिल किया था, लेकिन कक्षाओं में उन सवालों का बिलकुल भी ज़िक्र नहीं होता है। मसलन, इतिहास में था कि क्या बिना ईश्वर को माने

धर्म माना जा सकता है? इसपर कोई भी शिक्षक अपने बच्चों के साथ बात करते ही नहीं हैं। वैसे इसको बच्चों के बीच में लेकर कैसे जाएँ, यह दुविधा भी है। हायर सेकेण्ड्री स्तर पर भी यही स्थिति है। अकसर हम अपनी कक्षाओं में बच्चों के साथ में कोई ज़िरह ही नहीं करते, बस जो टेक्स्ट बुक में लिखा होता है वह बता देते हैं। उसके न आगे, न पीछे, क्योंकि शिक्षक की भी यह समझ नहीं होती कि अगर मुझे बात करनी है तो कौन-से बिन्दु से करनी है। हमारी पाठ्यपुस्तक में एक पाठ है 'आर्थिक क्रियाओं की समझ'। उसमें महिलाओं द्वारा किए जाने वाले कार्यों पर एक गतिविधि है। आपके घर में चौबीस घण्टों में कितने काम किए गए हैं, और उसमें महिलाएँ कितने काम करती हैं और पुरुष कितने, उसको लिखकर लाना है। लेकिन ज़्यादातर शिक्षक ये बोलते हैं कि इसकी ज़रूरत ही क्या है? पाठ पढ़ाओ और प्रश्न कराओ। यह कैसे बदले, मुझे एक बड़ी चुनौती यह भी लगती है।

चित्र 3

अरविंद : हमारे समाज में और शिक्षकों में इस विषय को लेकर एक तरह का मेंटल मेकअप बन गया है। मसलन, इसको कोई भी पढ़ा सकता है और इसमें ज़्यादातर सूचनाएँ हैं। हम समझ रहे हैं कि ये चीज़ें एकदम से नहीं बदलेंगी, और यह भी कि केवल टेक्स्ट बुक बनाने से बात नहीं बनती है। जब तक शिक्षकों से वार्तालाप नहीं हो, तब तक इन मुद्दों को टेकल नहीं कर पाएँगे। दूसरा, सरकार बदलेगी और फिर बदलाव होगा, तो कहीं ऊपर से बदलाव आने वाला है ऐसा भी मुझे नहीं लगता। नवीनजी ने तीखे उदाहरण दिए। इनको सामाजिक अध्ययन में Issues of Conflict कहते हैं। ये मुश्किल सवाल है कि जाति के बारे में चर्चा कैसे करें? यह आसान नहीं है। एक दूसरी सरल अवधारणा लेता हूँ। ऐसे लोग हैं जो खेती नहीं करते हैं, जंगलों में रहते हैं, अकसर उनको हम पिछड़ा कह देते हैं और हम मॉडर्न व शहरी हो गए हैं। खेतिहर समाज से और मॉडर्न हो जाना, ऐसे मुद्दों को चैलेंज करना ही इतिहास का काम है। इतिहास ही बताता है कि क्या बदला और क्या नहीं और उस बदलने के पीछे क्या कारण थे। पर इतिहास यह नहीं बताता कि खेतिहर समाज में रहने वाला कम बुद्धिमान है और शहरी समाज में रहकर अधिक पढ़ा-लिखा, कम्प्यूटर चलाने वाला ज़्यादा बुद्धिमान। इतिहास ये वैल्यू हमपर नहीं लगाता। जैसा नवीनजी ने बताया, विविधता का अध्याय सभी पढ़ा देते हैं, पर विविधता और भेदभाव पढ़ाने में संकोच होता है क्योंकि हर तरह की विविधता को भेदभाव कहना, और एक ख़ास तरह के भेदभाव को विविधता कहना ग़लत हो जाएगा। मेरा मानना है कि इस विषय और कक्षा में इसके शिक्षण को लेकर शिक्षक से जितना संवाद होगा तभी कुछ परिवर्तन हमें दिखेगा। पाठ्यपुस्तक मदद कर सकती है मगर उसकी भी सीमाएँ हैं।

नरेन्द्र : मैंने पाया है कि कक्षा में बच्चों से जब जाति या किसी तरह के भेदभाव पर बात की जाती है तो वे अपनी प्रतिक्रियाएँ देते हैं। ऐसा इसलिए, क्योंकि वो अपने समाज में ऐसी चीज़ देख रहे हैं। पाठ्यपुस्तक को साथ में रखते हुए जब हम जाति व्यवस्था की बात करते हैं तो

इस तरह के उदाहरण आते हैं कि तालाबों पर हर जाति के अलग घाट बने हुए होते हैं। बच्चे ये जानते हैं। वे बहुत सारी चीज़ें अपने समाज से सीखकर आ रहे हैं और उनसे इन चीज़ों पर बात करने पर वे प्रतिक्रिया देते हैं। साथ ही, उनके अन्दर अलग-अलग जातियों, धर्म, आदि को लेकर जो एक द्वन्द्व चल रहा होता है, वह भी कुछ साफ़ होता है। पता नहीं हम क्यों इन मुद्दों पर बातचीत करने में भयभीत हो जाते हैं।

अरविंद : नरेन्द्रजी सही कह रहे हैं। विज्ञान में हम कहते हैं कि ये प्रयोग करो और बताओ, परिणाम क्या आया और क्या चीज़ें हुईं? सामाजिक अध्ययन में केस स्टडी करना, बच्चों द्वारा पूछे गए प्रश्नों, अवलोकित किए गए मुद्दों पर चर्चा, यही प्रयोग हैं। पाठ में लिखे पर चर्चा जिसमें बच्चे अलग-अलग मत व्यक्त कर पा रहे हैं और एक दिशा ले रहे हैं, यह भी प्रयोग है। यही उसकी अन्तःक्रिया है और अवधारणा सीखने का तरीक़ा भी। यह कहना बिलकुल लाज़िमी है कि सामाजिक अध्ययन शिक्षण के मूल में यही प्रक्रिया होनी चाहिए। जैसे, आपने कक्षा में समानता के बारे में बात की। समता, समानता किसको मानेंगे, किसको नहीं मानेंगे, इसपर चर्चा करें। ये मत बताइए कि संविधान यही बोलता है। संविधान का बोझ नहीं रखिए, खुली चर्चा करिए। बच्चे कहते हैं कि हमको समान व्यवहार करना चाहिए, और बताएँगे भी कि कहाँ असमान व्यवहार हो रहा है। यह भी समझने का मौक़ा देना कि हम समानता चाहते हैं, और कई बार हम ही उसका विरोध भी कर देते हैं, ये द्वन्द्व वो भी समझ पाएँ।

चित्र 4

पाठ्यपुस्तक में लिखी बातों का विश्लेषण करना और उनपर चर्चा करना, गाँव से, समुदाय से जो बातें आ रही हैं उनका प्रमाण रखना, और वो बेहिचक सवाल पूछ पाए, चाहे वह आपकी बात से सहमत हो या नहीं, यही इस विषय की जान है।

महेश : पाठ्यपुस्तकें अच्छी हैं लेकिन उनका इस्तेमाल किस तरीक़े से करना है, यह शिक्षकों को न तो बताया गया है और न ही संवेदित किया गया है। दूसरा सवाल है, शिक्षकों के पूर्वाग्रह का। जाति या लिंग या फिर धर्म के मसलों पर बातचीत तभी सम्भव होगी जब स्वयं शिक्षक इन मूल्यों के प्रति संवेदनशील हों और उनकी ख़ुद की पूर्व धारणाएँ इन मूल्यों पर हावी न हों। संवैधानिक मूल्यों को लेकर शिक्षक सहमत नहीं होते हैं बल्कि समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, और पारस्परिक विश्वास को लेकर बच्चे कहते हैं कि नहीं, ये स्त्री-पुरुष के बीच जो भेद है वो नहीं होना चाहिए, ये ग़लत है। ये जो जाति भेद है, बहुत ग़लत है। लेकिन शिक्षक, जिनकी ज़िम्मेदारी ये सब काम करने या उस वातावरण को तैयार करने की है, अभी तैयार ही नहीं हैं। साथ ही, बच्चों में आलोचनात्मक विवेक पैदा हो, सृजनशीलता विकसित हो, यह हम चाहते हैं। लेकिन क्या शिक्षक के पास कक्षा में इतना समय और आज़ादी है कि वो कक्षा में इस तरह की गतिविधियों को संचालित कर सके? मेरे ही अनुभव हैं कि जब हम समानता,

जाति या धर्म के सवालों पर बातचीत करते हैं तो शिक्षकों-अभिभावकों के बीच से आवाज़ें उठती हैं कि क्या पढ़ाया जा रहा है? बच्चों को सवाल पूछने को कहते हैं तो उसको लेकर एक अलग तरह का वातावरण बनता है। कहने का तात्पर्य है कि चुनौतियाँ बहुत अधिक हैं, अब समाधान कैसे करें यह सोचने की बात है।

रजनी : इस तरह के मसलों के प्रति दृष्टिकोण और पूर्वाग्रह होते ही हैं। काफ़ी छोटी उम्र से ये बनने लगते हैं। परिवार की सोच का भी प्रभाव होता है। मुझे याद है, मैंने कक्षा 1 में बच्चों को पढ़ाना शुरू किया। समूह में बैठने के लिए कहने पर बच्चों ने कहा कि उनके साथ नहीं बैठ सकते वो तो अण्डा और चिकन खाते हैं। अब प्राथमिक कक्षाओं के बच्चों के साथ इस तरह के विषयों पर बातें नहीं होतीं, जबकि मुझे लगता है ऐसे मुद्दों पर वहाँ भी बात की जा सकती है। जेण्डर या जाति को लेकर चर्चा में कई बार आपको तटस्थ-सा रहना पड़ता है, क्योंकि किसी ख़ास पृष्ठभूमि से कोई बच्चा आ रहा है तो उसकी किस तरह की भाषा है, लोगों को ऐड्रेस करने का किस तरह का तरीक़ा है, इसका ध्यान रखना होगा, कक्षा में चर्चा क्या-क्या चीज़ें ध्यान में रखकर की जाएँ कि वो अलग है लेकिन वो भी धीरे-धीरे एक ही समूह में शामिल हो सकता है।

अरविंद : हम काफ़ी तीखी चीज़ों पर बात कर रहे हैं। डिस्क्रिमिनेशन, जेण्डर और धर्म, किसी भी स्तर पर इन मुद्दों पर चर्चा करना आसान बात नहीं है। हम संवेदनशील हों तब भी। एक बार की बातचीत से सबकुछ समझ में आ जाएगा। ये भी नहीं होगा। लेकिन सम्भावनाएँ हैं। उदाहरण के तौर पर, भूगोल में हम लैंड फ़ॉर्म की, वृक्षों की चर्चा करते हैं। ये ऐसे मसले हैं जो इतने जटिल नहीं हैं। यहाँ बहुत सम्भावनाएँ हैं गतिविधि और चर्चा करवाने की, अच्छे-से समझाने की। वहाँ भी सही शिक्षण हम नहीं करवा पा रहे हैं, क्योंकि अवधारणाओं को आधार बनाकर सोचने का काम बहुत ही सीमित है। कभी-कभी अवधारणा पर बात हो जाती है लेकिन वापस सूचनाओं के ढर्रे पर आ जाते हैं। मसलन, लेंड फ़ॉर्म में नोट कर लो कि यहाँ पहाड़ है, यहाँ पठार है, यहाँ चावल होते हैं। इसमें भी आसपास की ज़मीन को देखना, मिट्टी को, पत्थरों को पहचानना, यह छूट ही जाता है। सूचनाओं को देना और अवधारणाओं को सामने रखना, इस द्वन्द्व से निकलने की ज़रूरत है। दूसरी बात, हम अपने चारों ओर एक जकड़न देखते हैं और उस जकड़न में फँसे हुए महसूस करते हैं कि क्या-क्या करा पाएँगे और किस हद तक। पर मैं शिक्षकों को दोष नहीं देता, क्योंकि दृष्टिकोण बदलने के लिए संवाद की आवश्यकता है। ऐसा इसलिए कि उन्होंने भी ऐसे ही पढ़ा और समझा है। हमने अपनी व्यवस्था में संवाद को सम्भव किया ही नहीं है।

चित्र 5

मैं कहूँगा कि जहाँ शिक्षक ख़ुद परीक्षा लेते हैं, या ले सकते हैं, अपने स्तर पर जो कर सकते हैं, करने की कोशिश कीजिए। ये मुश्किल लगता है लेकिन यही उसका एक रास्ता है।

हालाँकि, स्थानीय प्रयासों में फ़र्क़ होगा। मैंने कई शिक्षकों से बात की है। वे कहते हैं, हमें पढ़ाने में मज़ा नहीं आ रहा, पर मजबूरी है तो हम पढ़ा रहे हैं। लेकिन अवधारणा पढ़ाने में किसी को भी आनन्द आता है, क्योंकि उसमें एक मानसिक विश्लेषण की ज़रूरत होती है।

रजनी : भाषा के स्तर पर डिस्क्रिमिनेशन लगभग हर एक कक्षा में होता है। कक्षा 2-3 के बच्चों को पता लग जाता है कि हमें अँग्रेज़ी या हिन्दी में बोलना है। मतलब, वे जानने लगते हैं कि किसी भाषा को ज़्यादा तवज्जो दी जाती है। फिर जो बच्चा इंग्लिश बोलता है वो बच्चा ठीक है। उनके साथ ये बात नहीं की जाती कि अलग-अलग भाषाएँ हैं, और जो बच्चा जो भाषा बोल रहा है वो ठीक है। यह सामाजिक अध्ययन का मुद्दा है। पर इसपर बात नहीं होती।

अरविंद : आप बिलकुल सही कह रही हैं। इसको हम पोलिटिकल साइंस में भी बोलते हैं कि पॉवर रिलेशन या सत्ता का अहसास बच्चों को बहुत जल्दी हो जाता है। उनको अहसास हो जाता है कि कौन सही है कौन नहीं। किसकी बात ज़्यादा रखी जा रही है, और किसको सुनना है। इसको आप मल्टीलिंगुअल क्वालिटी समझाकर कुछ नहीं कर सकेंगे। इसमें आप ख़ुद सभी भाषाओं को एक समान नज़र से देख रहे हैं। इसलिए सबको एक समान प्रोत्साहित करें तो धीरे-धीरे बच्चे समझेंगे कि कोई फ़र्क़ ही नहीं पड़ता। पर व्यवहार में ऐसा है कि अँग्रेज़ी में जवाब देने पर शिक्षक बहुत ख़ुश नज़र आते हैं। और मैं अपनी मातृभाषा में बोलता हूँ, मराठी में बोलता हूँ, छत्तीसगढ़ी में बोलता हूँ, या किसी और भाषा में बोलता हूँ, तो वो थोड़े नाख़ुश लगते हैं, तो ये बिलकुल व्यवहार से ही आएगा।

चित्र 6

नवीन : इसमें मैं एक मामला और भी देखता हूँ। और वह यह कि स्कूल किस तरह की संस्कृति निर्मित कर रहा है। संस्कृति से मेरा मतलब है कि स्कूल बच्चों को किस तरह का स्कोप दे रहा है या किस तरह की हाइरार्की डेवलप कर रहा है। इन सब चीज़ों से भी अन्य चीज़ें प्रभावित होती हैं। मसलन, कक्षा में अपनी बातों को रखना, विभिन्न भाषाओं में रखना या फिर एक दूसरे के ख़िलाफ़ विभिन्न नज़रियों को रखना। कई बार मेरे अवलोकन रहे हैं कि जब हम कक्षा में हाइरार्की निर्मित करते हैं और किसी बच्चे को मॉनिटर बना देते हैं, तो हम मॉनिटर ही नहीं बनाते उसको, वो शिक्षकों की तरह व्यवहार करने लगता है, कंट्रोलिंग अथॉरिटी सब बच्चों पर आज़माने लगता है।
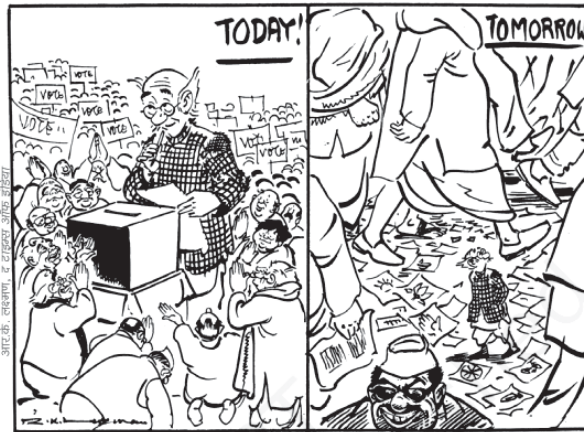
दूसरी महत्त्वपूर्ण बात सामाजिक अध्ययन के शिक्षक के पेशेवर विकास को लेकर है। मैंने पाया है कि अकसर शिक्षक नई पद्धतियों और खोजों को समझना नहीं चाहते और अपनी समस्या में कोई बदलाव भी नहीं करना चाहते। यह भी हो सकता है कि उनकी पहुँच नहीं है या उनकी रुचि नहीं है जिसके कारण कक्षा की रचना प्रभावित होती है। तीसरी सम्बन्धित चीज़ है कि गतिविधियों या चर्चा करने के लिए भी शिक्षक को सोचना पड़ता है। इसकी कल्पना करने की, समय की ज़रूरत है और कई मामलों

में हमारा सिस्टम इतना केन्द्रीकृत है कि कुछ करने की गुंजाइश ही नहीं है। हम यही मानकर चलते हैं कि जो सामाजिक अध्ययन के पाठ्यक्रम में शामिल है, वही सामाजिक अध्ययन का मूल मुद्दा है। यह हमें कभी भी पाठ्यपुस्तक से आगे बढ़ने का मौक़ा ही नहीं देता जिसमें रोज़मर्रा की घटनाओं और नई तरह की सामग्री, मसलन, समाचार-पत्रों की कतरन, फ़िल्म के अंश या गीत का कक्षा में उपयोग हो। ये सामाजिक अध्ययन में एक गहरी समस्या दिखाई दे रही है।

अरविंद : इस तंत्र में बहुत जकड़न है। यह केन्द्रीकृत है और शिक्षक की ऑटोनोमी एवं परीक्षा का इसपर एक तरह का क़ब्ज़ा है। पर इस परिस्थिति से जूझने की उम्मीद हमें कहाँ-कहाँ नज़र आती है?

नवीन : एक उम्मीद शिक्षकों से ही है। हम कार्यशालाएँ करते हैं, या बातचीत के कई मंच होते हैं, या स्कूल विजिट करते हैं, और इस दौरान शिक्षकों से लम्बी व नियमित बातचीत की तो बदलाव के मौक़े भी दिखे। इसका मतलब है संवाद के मौक़े बढ़ाने होंगे। संवाद के नए व विभिन्न तरीक़ों को खोजना पड़ेगा। शिक्षक साथियों को इन तरीक़ों के प्रति आकर्षित करना पड़ेगा कि बच्चों को विषय-वस्तु से केवल सूचनाएँ ही नहीं बल्कि कुछ नज़रिया भी देना होगा। सामाजिक अध्ययन अपने आसपास के समाज को समझने और उसके विश्लेषण के लिए कौशल एवं टूल्स उपलब्ध कराए। आशा की किरणें दिखती हैं लेकिन पहुँच का भी मसला है।

महेश : मुझे शिक्षकों और ख़ासकर बच्चों से उम्मीद दिखती है। मैंने बच्चों के साथ भी कुछ प्रयोग किए हैं। मसलन, इतिहास में कोई पाठ मैं पढ़ा रहा हूँ, वास्तु-कला पढ़ा रहा हूँ, तब मैंने बच्चों को गाँव की पुरानी इमारतों के बारे में लिखकर लाने को कहा। बच्चे लिखकर लाए और बहुत अच्छी जानकारी इकट्ठी हुई। इसी तरह, उस गाँव को यह नाम कैसे मिला अपने बुज़ुर्गों से पूछो, सरपंच से मिलो, उनके काम के बारे में जानो, तो बच्चों ने बहुत अच्छे-से जानकारी इकट्ठी की। शिक्षक यदि अपने पढ़ाने के तरीक़े में बदलाव करें, समाज में जो हो रहा है, उसे जोड़कर उदाहरण प्रस्तुत करें और अपने-आप को नेशनल, इंटरनेशनल और स्थानीय स्तर पर भी अपडेट रखें तो मुझे उम्मीद दिखती है। शिक्षक और बच्चों के माध्यम से हम ये सब कर सकते हैं।

रजनी : दीपकजी, आप भी कुछ कहना चाह रहे थे?

दीपक : इसमें कोई दो राय नहीं कि हम जो शिक्षा पर काम कर रहे लोग हैं उनमें शिक्षक हैं और छात्र हैं, तो उम्मीदें यहीं से करनी होंगी। लेकिन कई बार जब हम संविधान, उसकी प्रस्तावना और संवैधानिक मूल्यों पर कोई संवाद कर रहे होते हैं तो शिक्षक साथियों से ही यह भी सुनने को मिलता है कि आप लोग हमें नक्सली बना रहे हैं। दूसरी चीज़ यह है कि जहाँ तक मैं समझता हूँ सामाजिक अध्ययन के विषय अन्ततोगत्वा हमें मनुष्यता से जुड़ने के लिए अपनी ओर आमंत्रित करते हैं और उसकी तरफ़ जाने के लिए छात्रों के बीच काम करने के भी बहुत सारे तरीक़े हो सकते हैं। हालाँकि, जाति, धर्म, साम्प्रदायिकता, रूढ़ि या बहुत सारी सामाजिक बुराइयों जैसे असुविधाजनक सवाल निश्चित रूप से सामाजिक अध्ययन के अन्तर्गत ही आएँगे। भले ही वो हमारे पाठ्यक्रम में हों या नहीं, समाज में वे हैं ही। इसलिए सोचना

चित्र 7

होगा कि उनपर बातचीत कैसे हो? लेकिन हमने सामाजिक अध्ययन के विषयों को थोड़ा कमतर महत्त्व दिया है और तोता रटन्त ही माना है। दूसरा, मानविकी से जुड़े सारे विषय पढ़ने वाले जो विद्यार्थी हैं वो मान जाते हैं कि वे कम बुद्धिमान और कम होशियार हैं, लेकिन जो इंजीनियरिंग और इस तरह के विषय पढ़ने वाले हैं वे ज़्यादा अच्छे और तेज़ विद्यार्थी होते हैं, ऐसी धारणा है। सामाजिक अध्ययन को लड़कों के पढ़ने की अपेक्षा लड़कियों के पढ़ने की चीज़ अधिक मान लिया गया। ये भी मान लिया गया कि चूँकि लड़कियों के पास समझ कम होती है और इसमें समझना कुछ नहीं होता है। इसमें तो बस रटना होता है, अत: ये लड़कियों के लिए ज़्यादा अच्छा विषय है। लड़के तो विज्ञान, गणित और अँग्रेज़ी जैसे विषय पढ़ते हैं, इस तरह इसमें मुझे एक लैंगिक भेदभाव भी दिखा।

सामाजिक अध्ययन में अनुभवों का स्थान बहुत महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि वे पीढ़ी-दर-पीढ़ी संचित होते हैं। अनुभवों से हम आसानी से अनुमान की तरफ़ जा सकते हैं। रटना एक तात्कालिक कौशल है, और इससे हम अनुमान की तरफ़ नहीं जा सकते। जब अनुमान की तरफ़ नहीं जाते तो सामाजिक अध्ययन को समझने के सबसे ज़रूरी कौशल को मिस कर रहे होते हैं। मसलन, हम ऐसे प्रश्नों पर बात नहीं करते कि लोग क्या खाते हैं? क्या पोशाक पहनते हैं? कैसे रहते होंगे? कैसे जीते होंगे? गाँव कैसे बसे होंगे? त्योहार-पर्व क्या होता है? हम लोगों ने इतिहास को एक टेलीफ़ोन डायरेक्टरी बनाकर रख दिया। ये बदलाव रटने से नहीं हो सकता, यह संवाद से हो सकता है। हमें वैचारिक और मानसिक रूप से तैयार होना होगा कि अगर हम सामाजिक अध्ययन के विषयों पर बात कर रहे हैं तो इस तरह के असुविधाजनक सवाल टकराएँगे ही।

महेश : ऐसा नहीं है कि बिलकुल ही अँधेरा है। उत्तराखंड में बहुत सारे विद्यालयों में सामाजिक अध्ययन पर केन्द्रित दीवार पत्रिकाएँ बच्चों के द्वारा तैयार की जा रही हैं। गाँव में जाकर बच्चों के द्वारा सर्वेक्षण करना, साक्षात्कार लेना, ऐसी गतिविधियाँ भी बच्चे कर रहे हैं। एक पाठ है 'खाद्य सुरक्षा', उसमें मेरे विद्यालय के बच्चे पाठ से पहले गाँव में जाकर सार्वजनिक वितरण प्रणाली में कंट्रोल की दुकान चलाने वाले लोगों का साक्षात्कार लेते हैं। साक्षात्कार से पहले वे प्रश्न भी तैयार करते हैं। जब बच्चे उनसे बातचीत करके लौटते हैं, तब कक्षा में पाठ पढ़ाया जाता है। इस तरह, बच्चों के पास बहुत सारी सूचनाएँ, बहुत सारी जानकारियाँ पहले से होती हैं और चुनौतियाँ भी उनको पता होती हैं। प्रश्नों की प्रकृति में भी कुछ बदलाव की कोशिश है। मसलन, कल्पना कीजिए कि दांडी मार्च के दौरान आप गाँधीजी के साथ थे, या उस दौर में आप गाँधीजी के साथ थे तो आपने क्या-क्या देखा, क्या-क्या हुआ, कितने लोगों से बातचीत हुई। इसी तरह से एक और प्रश्न है कि आप एक ऐसे परिवार के बच्चे थे जो गिरमिटिया मज़दूरों से जुड़ा था, उनकी क्या और किस तरह की परिस्थितियाँ रही होंगी, कल्पना करते हुए

चित्र 8

लिखिए। ऐसे ही बच्चों के ही द्वारा एक संविधान का निर्माण कराया जा रहा है कि आपका एक बाल विकास संगठन है, उसका एक संविधान तैयार करना है। पूरी संविधान सभा बनाई जा रही है। बच्चों की अलग-अलग कमेटियाँ बनाई जा रही हैं। बच्चे उस पूरी प्रक्रिया को करते हुए सीख रहे हैं कि संविधान की आवश्यकता क्यों पड़ी होगी, क्यों पड़ती है। वे सामाजिक अध्ययन जैसे विषय को एक नए तरीक़े से समझ रहे हैं लेकिन बहुत कम संख्या में। इस संख्या को बढ़ाने की आवश्यकता है। परीक्षा प्रणाली को, प्रशिक्षणों के स्तर को, ठीक करने की ज़रूरत है और शिक्षकों की धारणाओं को लेकर काम करने की आवश्यकता है।

अरविंद : आप लोग सामाजिक अध्ययन के विषय को पहचानते हैं, और उसकी बारीक़ियों को समझते हैं। आप ख़ासकर ये भी समझ रहे हैं कि ये विषय अपने-आप में सिद्धान्त पर आधारित है। इसमें अवधारणाएँ हैं, प्रमाण हैं, और लॉजिक भी। इसके साथ, हमारे विचार हो सकते हैं और उन विचारों में भिन्नता हो सकती है, इसको भी हम स्वीकारते हैं। सबसे बड़ी बाधा इस बात की आती है कि हमारे आसपास की सोच में इस विषय को जनरल नॉलेज के रूप में देखा जाता है और परीक्षा भी उसी अनुरूप पूछी जाती है। दूसरी बाधा यह कि इसको एक नेशन बिल्डिंग के रूप में देखा जाता है। इसमें भी, वर्तमान राजनीति में जो हो रहा है, वह ज़्यादा हावी होता है क्योंकि सरकार की आलोचना नहीं कर सकते हैं। ये बाधाएँ सांस्कृतिक हैं। शिक्षकों को कभी भी इनपर संवाद करने का मौक़ा नहीं मिला और जहाँ मिला है, वहाँ बदलाव आया है। शिक्षक के स्तर पर तो उम्मीदें दिख भी रही हैं, लेकिन सिस्टमिक लेवल पर उम्मीदें कम ही हैं। शायद कभी आगे के विषय के लिए रख सकते हैं कि सिस्टमिक लेवल पर, चाहे परीक्षा में हो, ट्रेनिंग में हो, एससीईआरटी लेवल या ब्लॉक लेवल पर क्या बदलाव की गुंजाइश दिख रही है।

रजनी : आप सभी लोगों का इस संवाद में शामिल होने के लिए शुक्रिया।

- चित्र 3, 7 एवं 8 एकलव्य, भोपाल द्वारा प्रकाशित किताब *शिक्षा और आधुनिकता : कुछ समाज शास्त्रीय नज़रिए* से साभार
- चित्र 1, 2 एवं 5 एनसीईआरटी, नई दिल्ली से प्रकाशित किताब *सामाजिक विज्ञान, सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन-1* से साभार
- चित्र 6 एनसीईआरटी, नई दिल्ली से प्रकाशित किताब *सामाजिक विज्ञान, लोकतांत्रिक राजनीति-1* से साभार
- चित्र 4 एनसीईआरटी, नई दिल्ली से प्रकाशित किताब *सामाजिक विज्ञान, लोकतांत्रिक राजनीति-2* से साभार

पाठकों के विचार

महुआ के बहाने एक शैक्षिक पड़ताल, महेश झरबडे, अंक 13

लेख बहुत ही अच्छा लगा। मार्च-अप्रैल, जो परीक्षाओं के महीने होते हैं, में सभी बच्चों का महुआ बीनने में लग जाना जहाँ किसी को एक समस्या महसूस हो सकता था, वहीं शिक्षक ने इसे स्कूल से जोड़कर सीखने-सिखाने का ज़रिया बना दिया है। महुआ बीनना मध्य प्रदेश के बच्चों के लिए कार्य मात्र नहीं है, यह उनका आत्मविश्वास है, उनकी ख़ुशियों का त्योहार है, और इससे कमाई गई धनराशि से वे अपनी मनपसन्द की आवश्यक वस्तुएँ ख़रीदते हैं। इससे उनके अन्दर ज़िम्मेदारी का भाव पैदा होता है। वे अपने परिवार की मदद करते हैं और परिश्रम के महत्त्व को भी भली-भाँति समझ पाते हैं। जिस प्रकार बच्चों से की गई बातचीत को गणित विषय से जोड़ा गया है, वह महत्त्वपूर्ण है। लेखक की भाषा शैली लेख पढ़ने के लिए उकसाती है। गुल्ली के पेड़ से प्राप्त महुआ के बारे में जानकारी रोचक लगी।

अनीता ध्यानी, राजकीय प्राथमिक विद्यालय देवराना, यमकेश्वर, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

लेख में लेखक ने उस समय की चर्चा की है, जिस समय बच्चे महुआ बीनने के लिए जाते हैं और विद्यालय नहीं आते। इस लेख में उन्होंने कई बिन्दु उजागर किए। वे कहते हैं कि महुआ का मौसम बच्चों को कई चीज़ें सिखा देता है। मसलन, सुबह जल्दी उठना, स्वयं अपने कार्यों को करना, अपनी और परिवार की ज़रूरतों पर ध्यान देना, आदि। उन्होंने यह भी बताया कि महुआ बीनने का यह काम किस प्रकार पीढ़ी-दर-पीढ़ी एक संस्कृति की तरह आगे बढ़ रहा है। लेखक ने महुआ के मौसम में बच्चों द्वारा सीखी जाने वाली कुछ दक्षताओं और कौशलों का भी ज़िक्र किया। इसके अतिरिक्त, विज्ञान और गणित की विभिन्न अवधारणाओं, जैसे- जोड़ना, घटाना, फ़ायदा, नुक़सान आदि, जिन्हें बच्चे किस प्रकार अपने दैनिक जीवन में उपयोग करते हैं, के कई उदाहरण भी लेख में मिले। उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हुई कि महुआ (अथवा इस प्रकार की अन्य चीज़ों) का बच्चों के जीवन से काफ़ी क़रीबी रिश्ता होता है। यदि शिक्षक इन पर अपनी कक्षा प्रक्रिया में चर्चा करते हैं तो बच्चों के सीखने की क्षमता तो अच्छी होगी ही, साथ ही उनके भीतर विभिन्न संस्कृतियों, जातियों के लिए सम्मान की भावना का विकास भी किया जा सकता है।

अभिषेक गर्ग, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

ए री सखी, चलो भाषा खेलें!, मुकेश मालवीय, अंक 13

इस लेख में कक्षा में भाषा सिखाने के नए तरीक़ों को बताया गया है। इस तरह के लेख पाठ्यक्रम को कक्षा में रुचिकर बनाने में मदद करते हैं, साथ ही पहेलियों का उपयोग कर बच्चों को भाषा के साथ खेलने का नया तरीक़ा भी बताते हैं। लेख बताता है कि ऐसे प्रयोग कक्षा में बच्चों

और शिक्षकों में कैसे दिलचस्पी जगा सकते हैं। मुझे इस लेख से जो नया नज़रिया मिला वो है, बच्चों को पहेलियों के उत्तर पर भी सोचने और चर्चा के मौक़े बख़ूबी देना, वरना हमारी कक्षाओं में अकसर केवल पहेली के उत्तर बताकर पाठ्यक्रम को पूरा कर दिया जाता है। लेखक ने कक्षा में जो प्रयोग किया है, वो दिलचस्प है।

नंदा शर्मा मुले, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन महेश्वर, ज़िला खरगोन, मध्य प्रदेश

गणित शिक्षण में संख्या रेखा की अवधारणा : कभी चटपटी, कभी अटपटी, संदीप त्रिपाठी, अंक 13

इस आलेख में संख्या रेखा की उपयोगिता को ख़ूबसूरती से रेखांकित किया गया है। यह आलेख कक्षा में संख्याओं की अवधारणा और उनपर संक्रियाओं की समझ विकसित करने के लिए संख्या रेखा के उपयोग का उदाहरण प्रस्तुत करता है। बच्चों को सोचने और निष्कर्षों तक पहुँचने के अवसर दिए जाएँ तो सीखना मज़ेदार और आसान होने लगता है, यह बात यहाँ साफ़ दिखाई देती है। गत्ते के टुकड़ों वाला उनका दूसरा प्रयोग संख्याओं को कुछ अधिक मूर्त रूप में व्यक्त करता है। इसके बाद पुन: पहले प्रयोग को दोहराने पर दिखता है कि बच्चे संक्रियाओं को अधिक स्पष्ट समझ के साथ कर पा रहे हैं। यहाँ यह बात उभरकर आती है कि जब अमूर्त चिन्तन में कठिनाई हो रही हो तो कुछ मामलों में मूर्त प्रयोग अवधारणाओं को उनकी अमूर्तता तक ले जाने में सहायक सिद्ध हो सकते हैं। एक बात और, जब बच्चे ऋणात्मक पूर्णांकों के बीच अन्तर निकालने या उनमें घटाने की प्रक्रिया लागू करने का प्रयत्न कर रहे थे, तब वे दो अलग-अलग परिणामों पर पहुँच रहे थे। यह अनिश्चितता कैसे दूर की जा सकती है, आशा है, संदीपजी इसपर आगे भी कुछ काम करेंगे।

सुधीर श्रीवास्तव, रायपुर, छत्तीसगढ़

संख्या रेखा की अवधारणा को प्रारम्भिक कक्षाओं में परिचित कराना काफ़ी मुश्किल काम है। लेखक ने रोचक तरीक़े से कक्षा में संख्या रेखा की कई सारी गतिविधियाँ करके गिनती, जोड़ और घटाने जैसी अवधारणाओं पर कार्य किया है। दिलचस्प बात यह रही कि इसमें शिक्षक, गणित जैसे विषय को बच्चों के दैनिक जीवन से जोड़ पा रहे थे और बच्चों को चिन्तनशीलता से सवाल सुलझाने के लिए प्रेरित कर रहे थे। हालाँकि, गणित एक बहुत ही कठिन विषय माना जाता है जिससे बहुत सारे बच्चे और वयस्क भी डरते हैं। अगर इस तरह से कक्षाओं में गणित की अवधारणाओं को सरल और रोचक तरीक़े से सिखाया जाए तो गणित सीखने और करने में मज़ा आ जाएगा।

महिमा यादव, रिसोर्स पर्सन, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन महेश्वर, ज़िला खरगोन, मध्य प्रदेश

लेख में गणित शिक्षण में संख्या रेखा के महत्त्व पर बात की गई है। लेख बताता है कि बच्चों को गणित व गणित की अवधारणा को समझने में संख्या रेखा किस प्रकार सहायता करती है और गणित शिक्षण को आसान बनाती है। यहाँ अलग-अलग सन्दर्भों में संख्या रेखा को दर्शाया गया है, जिसमें अनुमान (estimation) लगाने के कौशल और सन्दर्भ में गणित शिक्षण को भी सराहा गया है। इससे बच्चों का गणित के प्रति लगाव बढ़ेगा। लेख में अमूर्त सन्दर्भ पर भी बात की गई है। विद्यार्थियों को संख्या रेखा समझने में जो समस्या आई है उसमें 'ज़ोर से पढ़ना' पर भी ज़ोर दिया गया है जो आवश्यक है।

वीना, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

विज्ञान, वैज्ञानिक सोच और विज्ञान शिक्षण, गौहर रज़ा, अंक 13

गौहर रज़ा के वक्तव्य से मैं बहुत प्रभावित हूँ। लेख के रूप में प्रस्तुत उनका ये वक्तव्य आज के माहौल में और भी ज़्यादा प्रासंगिक और महत्त्वपूर्ण है। गौहर जी इस बात की ओर स्पष्ट इशारा करते हैं कि हमें अपने संवैधानिक मूल्यों के आधार पर अपनी शिक्षा व्यवस्था को तैयार करना चाहिए था जो नहीं हो सकी। वे इस बात का भी इशारा करते हैं कि आज भी वैज्ञानिक नज़रिए यानी वैज्ञानिक मिज़ाज का समाज बनाने में हम नाकाम ही रहे हैं। इसकी ज़िम्मेदारी शिक्षा को निभानी थी, जो यह नहीं निभा सकी। वैज्ञानिक मिज़ाज के ज़रिए हमें ऐसे नागरिक बनाने होंगे जो पढ़ाने वाले शिक्षक से और ख़ुद से भी आलोचनात्मक सवाल पूछ सकें कि जो कुछ भी है और जैसा भी है, वह ऐसा ही क्यों है? क्या स्थितियाँ इससे अलग या और बेहतर हो सकती हैं? क्या हम एक मनुष्य के तौर पर एक दूसरे को बग़ैर किसी शर्त के प्यार कर सकते हैं? उन्होंने आगे कहा कि समाज में एक मनुष्य होने के नाते हम सबकी प्रमुख ज़िम्मेदारी यही है कि हम इंसान को इंसान के रूप में प्यार करें और मिलजुलकर रहें। यही वैज्ञानिक मिज़ाज का असल मक़सद है जिसे हम सबको मिलकर पूरा करने की ज़िम्मेदारी लेनी होगी, क्योंकि भविष्य युवाओं का ही है। उन्होंने बताया कि आप को ही तय करना है कि कैसा समाज भविष्य में गढ़ना चाहते हैं। यह इस बात पर बहुत कुछ निर्भर करेगा कि वैज्ञानिक नज़रिए के साथ तर्कपूर्ण समाज के निर्माण में अपनी भूमिका को हम किस तरह से देख पा रहे हैं।

दिनेश पटेल, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन धामनोद, ज़िला धार, मध्य प्रदेश

इस लेख में विज्ञान शिक्षण सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। शिक्षक को अपने शिक्षण कार्य में हमेशा इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि बच्चे जिज्ञासु बनें और अधिक-से-अधिक प्रश्न पूछें। लेखक कहते हैं कि यदि बच्चों को प्रश्न पूछने के अवसर नहीं मिल पाएँगे तो नई खोजें कैसे हो पाएँगी। उनका कहना है कि विज्ञान में कोई उत्तर अन्तिम नहीं होता, इसलिए बच्चों के मन में प्रश्न उठना आवश्यक है। वे कहते हैं कि बच्चों को कोई भी बात सीधे मान लेना नहीं सिखाया जाना चाहिए। यदि कक्षाओं में इस प्रकार शिक्षण कार्य होगा तो निश्चित ही हम वैज्ञानिक मस्तिष्क पैदा कर पाएँगे जो आज देश की ज़रूरत है।

रितेश राठौड़, शासकीय प्राथमिक विद्यालय करोली, महेश्वर, ज़िला खरगोन, मध्य प्रदेश

बेहतर शिक्षक वह है जिसका बच्चों के साथ मानवीय रिश्ता और जुड़ाव हो, साक्षात्कार, अंक 13

शिक्षिका इंदु पंवार से मीमांशा की हुई बातचीत से एक बात यह समझ आई कि एक बेहतर शिक्षक वह है जिसका बच्चों के साथ रिश्ता और जुड़ाव हो। मुझे अपने काम के सम्बन्ध में भी दो-तीन बातें समझ में आईं। पहली यह कि एक शिक्षक को अपनी कक्षा शिक्षण की प्रक्रियाओं में नवाचार लाने का प्रयास करना चाहिए। दूसरी शिक्षक की अपने काम में रुचि और लगन होनी चाहिए। और अन्तिम बात यह कि अपने बच्चों के सीखने, न सीखने के बारे में सतत चिन्तन करना और उसके लिए तैयारी करने की आवश्यकता है। इंदुजी और मीमांशाजी के बीच हुई बातचीत काफ़ी अच्छी पहल है। आगे भी ऐसे लेखों व संवाद को पढ़ना मैं पसन्द करूँगा।

रामेश्वर प्रसाद लोधी, पूर्व प्राथमिक शिक्षक, सीएम राइज़ स्कूल राहतगढ़, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

शुरुआती कक्षाओं में कहानी शिक्षण, संध्या पाण्डेय, अंक 13

इस लेख में लेखिका ने भाषाई उद्देश्यों की प्राप्ति और कहानी पर कक्षा में काम करने की प्रक्रिया विस्तार से रखी है। कहानी के महत्त्व पर बात रखकर आगे बढ़ते हुए उन्होंने कहानी पर काम करने के चरणों को अपने अनुभवों में बताया है। लेख में जो सबसे अच्छी बात मुझे लगी वह यह कि कहानी पर काम करने की पूरी प्रक्रिया में कैसे एक शिक्षक बच्चों का आकलन भी कर रहे होते हैं। इससे हर बच्चे की सीखने की गति का भी शिक्षक को पता लगता है और उसके अनुसार वह बच्चों के लिए पथ तय कर सकता है। दूसरी यह कि कहानी में इतने प्रश्न न हो जाएँ कि कहानी सुनने का मज़ा ही ख़त्म हो जाए। लेखिका बताती हैं कि कहानी ऐसी हो जो बच्चों के मन में गुदगुदी पैदा करे। पर किताब चुनते वक़्त एक शिक्षक को मज़े के अलावा और किस बात को ध्यान में रखना चाहिए, इसपर और विस्तार से बात की जा सकती है। आशा है, लेखिका आगे इसके बारे में और भी लिखेंगी, और तीसरी बात यह कि कहानी को सुनाने से पहले बच्चों के साथ कहानी के सन्दर्भ स्थापित करने के बारे में भी थोड़े विचार रखे जा सकते हैं।

प्राची अग्रवाल, सदस्य, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन खुरई, ज़िला सागर, मध्य प्रदेश

पाठशाला भीतर और बाहर का 13वाँ अंक मिला। इस पत्रिका में शिक्षकों के जो नवाचारी शैक्षिक प्रयोग प्रकाशित होते हैं, उनको पढ़ने की जिज्ञासा सदा ही मेरे मन में रहती है। इस अंक में संध्या पाण्डेय का लेख बहुत अच्छा लगा। इसमें कहानी शिक्षण की जो प्रक्रियाएँ बताई गई हैं, वे अनुकरणीय हैं। कहानियाँ सुनाने की ढेर सारी प्रक्रियाएँ, जैसे– मुखौटे का प्रयोग कर, कहानी पर बातचीत कर, बच्चों को सोचने के मौक़े देकर उनके अनुभव को शामिल करना, कहानी को आगे बढ़ाने के लिए बच्चों को प्रेरित करना, कहानी को पढ़ने में सहायक बनाना, स्वयं कहानियों का बच्चों के द्वारा आकलन, आदि बढ़िया लगीं। भाषा कौशल के विकास के लिए ये लेख बहुत बढ़िया है।

इंदु पंवार, प्राथमिक विद्यालय गिर गांव, पौड़ी गढ़वाल, उत्तराखंड

बच्चों के नामों से पढ़ना–लिखना सिखाना, मीनू पालीवाल, अंक 13

मीनू पालीवाल द्वारा लिखित यह लेख मुझे अपनी कक्षा में बच्चों के नाम को लेकर किए गए काम की याद दिलाता है। इस लेख में लेखिका ने काफ़ी सारी रोचक और प्रभावी गतिविधियों को दर्ज किया है, जिनका प्रमाण मुझे अपनी कक्षा से भी मिला है।

कोमल, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन महेश्वर, ज़िला खरगोन, मध्य प्रदेश

शिक्षकों के साथ पढ़ने–लिखने का सफ़र, कमलेश चंद्र जोशी, अंक 13

लेखक ने एक नई पहल की शुरुआत की है। जैसा कि उन्होंने बताया कि शिक्षक साथी उतनी निरन्तरता के साथ अभी पढ़ाई में रुचि नहीं रख पा रहे हैं जितनी शिक्षक बनने से पूर्व रखते थे। लगभग 50 शिक्षकों का जुड़ना और 28 का सक्रिय होना अच्छी पहल है। यह भी सही है कि किसी भी आलेख, कविता, कहानी, संस्मरण, आदि का चुनाव और उसे मंच पर साझा कर उसपर समझ बनाना और कार्य करना, इसपर बहुत ध्यान देने की ज़रूरत रहती है। यह भी सही है कि शिक्षक साथियों को स्कूल समय के बाद व्यक्तिगत कारणों से भौतिक रूप से समय नहीं मिल पाता तब

भी इस मंच के लिए वे कभी भी समय निकाल सकते हैं। यह समूह निश्चित रूप से सोचने वाला समूह बनेगा और समझ के साथ पढ़ने की ओर आगे बढ़ेगा। यह बात महत्त्वपूर्ण है कि हम बच्चों में पढ़ने के प्रति रुझान पैदा करना चाहते हैं तो हमें भी पढ़ना होगा।

कमल माली, अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन महेश्वर, ज़िला खरगोन, मध्य प्रदेश

जातिगत असमानता का दर्पण है कहानी 'दिलेर बड़ेय्या', माया मौर्य, अंक 13

'दिलेर बड़ेय्या' की कहानी को पढ़ने के दौरान इसके सजीव पात्रों को महसूस कर पाया। वर्तमान समाज में आज भी ऐसी घटनाएँ होती चली आ रही हैं, जिनमें किसी व्यक्ति या समुदाय को सिर्फ़ इस वजह से सामाजिक शोषण व भेदभाव का शिकार होना पड़ता है क्योंकि उसका जन्म किसी विशेष जाति-समुदाय में हुआ है। यह भेदभाव करने वाले कोई और नहीं, बल्कि प्रबुद्धजीवियों का ऐसा समूह है जो अनन्त कुतर्कों से परिपूर्ण है। इस प्रकार की जातिगत समस्याओं का निदान तभी सम्भव है जब समस्त समाज बौद्धिक रूप से या तो बड़ेय्या बन जाए या फिर पटेल।

पंकज यादव, एसोसिएट, चमोली, उत्तराखंड

इस आलेख में एक किताब के साथ बच्चों की प्रतिक्रिया तो है ही, पर सबसे महत्त्वपूर्ण यह है कि शिक्षक की राय भी इसमें देखने को मिली। बहुत बार बच्चों से बातें हो जाती हैं और किसी मुद्दे पर उनकी प्रतिक्रिया तो मिल जाती है, लेकिन एक शिक्षक ख़ुद इसके बारे में क्या सोचता है, कैसे समझता है, यह जानने को नहीं मिलता। माया मौर्य ने बहुत ही ईमानदारी से इस मुद्दे पर अपनी राय रखी है। मैं मानकर चलती हूँ कि अपनी राय के बारे में उनकी बच्चों से भी बात हुई होगी। बच्चे अपने शिक्षक की राय से काफ़ी हद तक प्रभावित होते हैं। वे यह भी महसूस कर पाते हैं कि कोई शिक्षक सिर्फ़ दिखावे के लिए ये बात कर रहा है या सचमुच उसके विचार ऐसे ही हैं। लेखिका ने किताब के चित्रों के बारे में बहुत ही गहरा और सूक्ष्म विश्लेषण किया है। ऐसे आलेख किताबों को देखने-समझने की हमारी नज़र बनाते हैं। लेखिका को बधाई और उम्दा आलेख प्रकाशित करने के लिए *पाठशाला* की सम्पादकीय टीम को धन्यवाद।

डॉ. अंजना त्रिवेदी, भोपाल, मध्य प्रदेश

अख़बार के रास्ते भाषा शिक्षण का अनुभव, अर्चना द्विवेदी, अंक 13

अख़बार जैसी सामान्य और सहज उपलब्ध सामग्री के माध्यम से बच्चों के साथ भाषा शिक्षण का ये अनुभव बहुत-सी बातें कहता है। सबसे पहली तो यह कि भाषा शिक्षण कोई अलग से होने वाला काम नहीं है। इसे रोज़ के कामों और सन्दर्भों के बीच में ही प्रभावी तरीक़े से किया जा सकता है। दूसरी, भाषा शिक्षण के लिए हमें अलग से कोई सामग्री बनाने की ज़रूरत हमेशा नहीं होती है। इससे आसपास उपलब्ध साधन और सामग्री के ज़रिए भी भाषा शिक्षण किया जा सकता है। आलेख में हमने देखा कि अख़बार के साथ काम करते हुए बुनियादी भाषा कौशलों के साथ ही तर्क, विश्लेषण, परस्पर सम्बन्ध देख पाना और समालोचनात्मक टिप्पणी जैसे उच्च भाषा कौशल भी एक योजनाबद्ध प्रयास से सिखाए जा सकते हैं। न सिर्फ़ भाषा, बल्कि सामाजिक विज्ञान शिक्षण के लिए भी अख़बार एक महत्त्वपूर्ण सामग्री है। पुस्तकालय में एक गतिविधि करने की एक दृष्टि भी मुझे इस आलेख से मिली है।

दिलीप शर्मा, सेन्टर फॉर माइक्रो फाइनेन्स, उदयपुर, राजस्थान

'बुढ़िया की रोटी' कहानी का समाजशास्त्र, नंदा शर्मा, अंक 12

इस आलेख में बच्चों के साथ चर्चा वाला हिस्सा बहुत मज़ेदार लगा। इसमें बच्चों की बातों में तर्क के साथ-साथ मौलिकता भी नज़र आई। बच्चे कहानी को विभिन्न पात्रों के साथ जोड़ते हुए समझे और उनके प्रति एक संवेदना का भाव बच्चों में जागा, जबकि कहानी का केन्द्र बुढ़िया और उसकी रोटी थी। कहानी के केन्द्रीय भाव को क़ायम रखते हुए उसमें समाहित विभिन्न दृश्यों और किरदारों पर नज़रिया विकसित करना, एक अच्छी चर्चा का गुण है। बच्चों की प्रतिक्रिया से भी समझ आता है कि वह वास्तव में एक बढ़िया चर्चा रही होगी जिसके चलते बच्चे इस प्रकार सोच पाए। इस तरह के कक्षा अनुभव और किसी कहानी पर भिन्न-भिन्न नज़रिए न सिर्फ़ उनके लिए मददगार हैं जो बच्चों के साथ शिक्षण कार्य करते हैं, बल्कि कहानी को दूसरे एंगल से देखने में आम पाठकों की भी मदद करते हैं। ऐसे अनुभवों को सहजने में *पाठशाला भीतर और बाहर* और इसके ही जैसी अन्य शैक्षिक पत्रिकाओं के प्रयास सराहनीय हैं।

नीतू यादव, एकलव्य, भोपाल, मध्य प्रदेश

बाल साहित्य की ज़रूरत, हेमवती चौहान, अंक 12

इस आलेख में हेमवतीजी ने साहित्य के उपयोग के समय बच्चों के साथ हुई चर्चाओं के कुछ अंश साझा किए हैं। इनसे महसूस होता है कि साहित्य बच्चों के साथ चर्चा करने और बच्चों के अनुभवों को कक्षा तक लाने के अनगिनत अवसर उपलब्ध करवाता है। शैलजा मेनन भी अपने आलेख 'बाल साहित्य के ज़रिए भाषा एवं साक्षरता को सींचना' में कहती हैं, "अगर हम चाहते हैं कि बच्चे जो पढ़ रहे हैं उसका अपनी ज़िन्दगी से सम्बन्ध देख पाएँ, लिखित सामग्री को प्रभावी ढंग से इस्तेमाल करने, उसकी समीक्षा करने और उससे गुज़रने में सक्षम हों, तो अचानक हम पाते हैं कि भाषा और साक्षरता कक्षाओं में बच्चों के साहित्य का इस्तेमाल ऐच्छिक मसला नहीं बल्कि पाठ्यचर्या का अनिवार्य और केन्द्रीय अंग बन जाता है।" लेखिका ने इस बात को भी उभारा है कि हमें स्वयं भी पढ़ना चाहिए। प्रो. कृष्ण कुमार भी अपने एक साक्षात्कार (पुस्तकालय की परिकल्पना) में इस बात को कहते हैं और पढ़ने की संस्कृति के विकास के लिए इसे बेहद ज़रूरी मानते हैं। इससे बच्चे भी पढ़ने के लिए प्रेरित होंगे क्योंकि आमतौर पर बच्चे वही करते हैं जो अपने आसपास होते देखते हैं। आलेख में पुस्तकालय और पाठ्यक्रम में सम्बन्ध जोड़कर देखने और उसके इस्तेमाल के अनुभव भी साझा किए गए हैं जो बहुत सटीक हैं। इस तरह हम पाठ्यक्रम को समृद्ध कर सकते हैं और हर शिक्षक का पुस्तकालय से जुड़ाव सुनिश्चित किया जा सकता है। देखा जाता है कि आमतौर पर पुस्तकालय सिर्फ़ पुस्तकालय प्रभारी शिक्षक तक ही सीमित रहता है और अन्य शिक्षक उससे दूरी बनाकर ही रखते हैं। अगर पुस्तकालय प्रभारी सभी शिक्षकों के सहयोग से पुस्तकों को पाठ्यक्रम से जोड़कर देखते हैं तो सभी शिक्षक पुस्तकालय का उपयोग करने की ओर बढ़ सकते हैं और धीरे-धीरे साहित्य का उपयोग सुनिश्चित किया जा सकता है।

भरत सिंह, लाइब्रेरी एजुकेटर, जयपुर, राजस्थान

बच्चों के नामों से पढ़ना–लिखना सिखाना, मीनू पालीवाल, अंक 13

यह आलेख रोचक गतिविधि-आधारित है। भाषा सीखने का यह एक अच्छा माध्यम है कि नामों के साथ इसकी शुरुआत की जाए। अपने नाम के साथ बच्चों का ख़ास जुड़ाव होता है, ऐसे में इसे सुनना या लिखा देखना उन्हें अच्छा महसूस कराता है। लेखिका ने बच्चे के द्वारा किए सूक्ष्म

अवलोकन का ज़िक्र किया है। यह इस बात की ओर भी इशारा करता है कि शिक्षक भी बारीक़ी से बच्चे का अवलोकन कर पा रहा है। इस लेख को पढ़ते हुए मुझे भी अपनी कक्षा व पढ़ाने के दौरान के कुछ अनुभव याद आ रहे थे कि कोई भी व्यक्ति भाषा सीखने की शुरुआत में अपना नाम लिखने की चाह ज़्यादा रखता है। ऐसा मैंने कक्षा में भी अनुभव किया और मेरे परिवार में मेरे पिता के साथ भी। साथ ही, मुझे कुछ समय पूर्व सन्दर्भ पत्रिका में प्रकाशित महेश झरबडेजी का लेख 'बच्चों के नाम भी रोचक टीएलएम' ज़ेहन में ताज़ा हो गया। बेहतरीन लेख के लिए लेखिका को बधाई।

विज्ञान, वैज्ञानिक सोच और विज्ञान शिक्षण, गौहर रज़ा, अंक 13

यह एक बेहतरीन लेख है। लेख की शुरुआत ही दिलचस्प पंक्तियों "किसी बात को तब तक नहीं मानना चाहिए जब तक उसको परख नहीं लिया जाए" के साथ हुई है। सवाल करना, जवाब-तलब करना, इसके बीच ही धर्म और विज्ञान के फ़ासले को जीवन्त सवालों व अनुभवों के साथ खोला गया है। यह लेख कहीं-कहीं ख़ुद पर भी सवाल खड़े करता है और अपने स्तर पर सोचने के मौक़े भी बनाता है। एक मुक़म्मल लेख लिखने के लिए बहुत बधाई।

रुबीना खान, मुस्कान भोपाल, मध्य प्रदेश

लेखकों से आग्रह

पाठकों से प्राप्त सुझाव के आधार पर *पाठशाला भीतर और बाहर* में छपने वाले लेखों की प्रकृति, स्वरूप और प्रस्तुति में कुछ परिवर्तन किए गए हैं। प्रयास है कि पत्रिका ज़मीनी स्तर पर काम कर रहे साथियों के लिए अपने अनुभवों को दर्ज करने, उनको विस्तार देने और गहराई देने के लिए एक उपयुक्त मंच बने और साथ ही इन अनुभवों को साझा करने का भी। इसी तरह यह ज़मीनी स्तर पर होने वाले कार्य की दृष्टि से अर्थपूर्ण व कार्य में मददगार भी बन पाएगी। और व्यापक पाठक वर्ग सहित आप व हमारे शिक्षक साथी इसे पढ़ेंगे और इसका अधिकाधिक उपयोग कर पाएँगे।

आपसे आग्रह है कि आप अनुभवों को दर्ज कर पत्रिका में छपने के लिए भेजें। आप स्कूल में, कक्षा में, और अलग–अलग मंचों पर शिक्षकों के साथ किए गए काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके साथी शिक्षक भी अपने काम के अनुभवों को भेज सकते हैं। आपके द्वारा भेजे गए लेख बच्चों के सीखने–सिखाने से सम्बन्धित हो सकते हैं, जैसे– विभिन्न विषयों या प्रकरणों को सीखने–सिखाने के अनुभव या फिर शिक्षकों के साथ अन्तर्क्रिया के नए तौर–तरीक़ों पर केन्द्रित या फिर किसी महत्त्वपूर्ण या उल्लेखनीय संवाद के बारे में जो औरों के लिए भी उपयोगी हो। इनके और बहुत–से उदाहरण हो सकते हैं। जैसे– बच्चों के साथ काम के सन्दर्भ में गणित, विज्ञान, भाषा, सामाजिक अध्ययन, आदि किसी भी विषय की किसी भी कक्षा के अनुभव। ये अनुभव किसी अवधारणा को बच्चों को सिखाने, उन्हें गतिविधियाँ कराने या उनके साथ खेल खेलने आदि के हो सकते हैं।

आप, स्कूल और शिक्षकों के साथ (इसमें एंगेज्ड शिक्षक भी शामिल हैं) जो काम कर रहे हैं, उससे सम्बन्धित लेख भी साझा कर सकते हैं। इसमें आपने जो किया उसके साथ–साथ आप अपने काम में किस ख़ास तरह से आगे बढ़े और वह आपने क्या सोचकर किया, इस विचार को शामिल कर सकते हैं। इस दौरान आप अपने काम के सकारात्मक नतीजे व उसमें दिखने वाले गैप भी बताएँ, जैसे– बाल सभा या बाल शोध मेलों में कुछ परिवर्तन किया, तो वह क्या सोचकर किया, उसका क्या नतीजा निकला और बेहतर करने के लिए उसमें और क्या–क्या किया जा सकता है, आदि? इसी तरह कक्षा में बच्चों को चित्रकला करवाने, कहानी सुनाने या किसी नाटक में भाग लिया, तो उसके बारे में क्या अनुभव रहे, यह बता सकते हैं। गणित का एक उदाहरण शिक्षण सामग्री जैसे– गिनमाला का प्रयोग करके गिनती सिखाने का हो सकता है। इसी तरह वालंटरी टीचर फ़ोरम, टीचर लर्निंग सेंटर, समर–विंटर कैम्प के शैक्षिक प्रयासों आदि के बारे में भी मननशील लेख हो सकते हैं। ये लेख पाठक को यह समझने में मदद करें कि उनमें क्या प्रयास था, किस परिस्थिति में उसे सोचा गया, कैसे किया गया, क्या हो पाया, क्या कमी रही, क्या सीखा और आगे के लिए आपके समूह के लिए और पाठकों के लिए उसके क्या निहितार्थ हैं?

इसी तरह, शिक्षकों के साथ प्रशिक्षण के दौरान, वालंटरी टीचर फ़ोरम में कार्य के दौरान, टीचर लर्निंग सेंटर पर हो रहे प्रयासों में, या उनके साथ सहकारी शिक्षण के दौरान हुए अनुभवों को मननशील व समालोचनात्मक दृष्टिकोण से लिखकर भेजें तो अच्छा रहेगा। इसी तरह बच्चों अथवा शिक्षकों के साथ कक्षा के बाहर हुए सार्थक अनुभव भी आप मननशील ढंग से लिख सकते हैं।

लेखों के विषय और विषयवस्तु ऐसी हो जिससे फ़ील्ड में कार्य करने वाले साथियों और शिक्षकों को वैचारिक मदद मिलती हो और उनका दक्षता संवर्धन होता हो। लेख ऐसे हों जो स्कूल व कक्षा में पढ़ने–पढ़ाने के तरीक़ों व अन्य गतिविधियों में शिक्षकों व फ़ाउण्डेशन के साथियों द्वारा इस्तेमाल किए जा सकें। साथ ही ऐसे लेख भी हों जिनसे विविध विषयों एवं उनमें बुनी अवधारणाओं को पढ़ाने

में मदद मिले और उनकी भाषा व विषय सामग्री अधिक–से–अधिक सदस्यों को आसानी से समझ में आने वाली हो।

यदि लेख में दिए गए किसी विवरण, चर्चा अथवा व्याख्या से सम्बन्धित किसी तर्क अथवा प्रमाण के लिए किसी पुस्तक, जरनल या वेब स्रोत से कोई सामग्री ली गई हो तो उसका उल्लेख ज़रूर करें। आप जो भी सन्दर्भ सामग्री लें उससे लेख को अर्थपूर्ण, तार्किक और गुणवत्तापूर्ण बनाने में मदद मिले।

इसके अलावा आप शिक्षा से सम्बन्धित किसी पुस्तक, फ़िल्म अथवा अन्य शिक्षण सामग्री के बारे में भी लिख सकते हैं, मसलन उनका परिचय, समीक्षा अथवा विश्लेषण।

आशा करते हैं कि आपके यह लेखकीय अनुभव ठोस एवं यथार्थपरक होंगे। उनमें कुछ ऐसा ज़रूर हो जो पाठक को रुचिपूर्ण व सार्थक लगे।

लेखकों को अपने लेखन के सन्दर्भ में किसी भी तरह के सहयोग की आवश्यकता महसूस होती है तो वे इसके लिए सम्पर्क कर सकते हैं। उन्हें सम्पादक मण्डल के सदस्यों द्वारा आवश्यक सहयोग और सुझाव दिए जाएँगे। उम्मीद है कि *पाठशाला भीतर और बाहर* का यह चौदहवाँ अंक आपको अच्छा लगेगा और आप इसके अगले अंकों के लिए ज़रूर लिखेंगे। पत्रिका के इस अंक पर आपकी टिप्पणियों व सुझावों का हमें हमेशा की तरह इन्तज़ार रहेगा।

मुद्रक तथा प्रकाशक मनोज पी. द्वारा अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन फॉर डेवलपमेंट के लिए अज़ीम प्रेमजी फ़ाउण्डेशन, प्लॉट नं. 163-164, त्रिलंगा कोऑपरेटिव सोसाइटी, E–8 एक्सटेंशन, त्रिलंगा भोपाल, मध्यप्रदेश 462039 की ओर से प्रकाशित एवं गणेश ग्राफ़िक्स, 26-बी, देशबंधु परिसर, प्रेस काम्प्लेक्स, एम.पी. नगर, जोन-1 भोपाल द्वारा मुद्रित।

सम्पादक : गुरबचन सिंह

Anuvada Sampada

अनुवाद सम्पदा

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अनुवाद रिपॉज़ेटरी

अवधारणाओं तथा विचारों के साथ गहराई से जुड़ने हेतु विद्यार्थियों और शिक्षकों के लिए भारतीय भाषाओं में उच्च गुणवत्ता के 2000 से अधिक शैक्षणिक संसाधनों का भण्डार।

भारतीय भाषाओं में शैक्षणिक संसाधनों के लिए निशुल्क, ओपन-एक्सेस पोर्टल

- पुस्तकें और पुस्तक अंश
- अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय के प्रकाशनों से लेख
- विभिन्न संगोष्ठियों और रीडरों से चुनिन्दा लेख

अनुवाद सम्पदा के लिए लिंक :

https://anuvadasampada.azimpremjiuniversity.edu.in/

अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय की अन्य पत्रिकाएँ